एम.ए.एच.आई. -02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. -02- विश्व इतिहास
(राष्ट्रवाद,पूँजीवाद एवं समाजवाद) - 5

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-5

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 20	
प्रथम विश्व युद्ध के कारण व उसकी पृष्ठभूमि	5–26
इकाई 21	
रूस की क्रांति की बौद्धिक नींव	27–43
इकाई 22	
रूस की क्रांति एवं इसका प्रभाव	44–60
इकाई 23	
लेनिन आंतरिक तथा विदेश नीति	61–74

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. अमीनुद्दीन
इतिहास विभाग
डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. मंसूर हैदर
इतिहास विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. (श्रीमती) कमलेश वर्मा,

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)एम.के.घड़ोलिया
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - मार्च 2011 MAHI-02/ISBN No.-13/978-81-8496-261-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

यूनिट-20

प्रथम विश्व युद्ध के कारण व उसकी पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 दूरगामी कारण

20.2.1 गुप्त सन्धि पद्धति

20.2.2 सैनिक वाद

20.2.3 उग्रराष्ट्रवाद

20.2.4 आर्थिक साम्राज्यवाद

20.2.5 समाचार पत्र व उनकी भूमिका

20.2.6 जातिवाद

20.2.7 नैतिक उद्देश्य

20.2.8 साम्राज्यवाद और जनमत

20.2.9 खोये हुवे क्षेत्रों की पुन: प्राप्ति का प्रश्न

20.3 अंतर्राष्ट्रीय अव्यवस्था

20.3.1 हेग सम्मेलन की असफलता

20.3.2 एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्म देता है

20.3.3 बिस्मार्क की कुटनीति व उसके परिणाम

20.3.4 फ्रांस की कुटनीति व उसके परिणाम

20.3.5 जर्मनी की महत्वोकाक्षां

20.3.6 जर्मनी व इंग्लैण्ड की नौसेना के क्षेत्र में प्रतिद्धन्द्वता

20.3.7 जर्मनी की निकटपूर्ण की नीति

20.4 तात्कालिक कारण सराजीवो का हत्याकांड

20.5 बोध' प्रश्न

20.6 संदर्भ ग्रथं

20.0 उद्देश्य:-

इस इकाई में हमारा इरादा प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि और उसके कारणों को बताना है। इसके पश्चात् इन कारणों का विस्तार से विश्लेषण किया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि-

- प्रथम विश्व युद्ध अन्य युद्धों से किस प्रकार भिन्न था।
- युद्ध के दूरगामी और तात्कानिक कारण क्या थे।
- क्या यह युद्ध विचारों का युद्ध था।

- क्या यह युद्ध आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता का परिणाम था।
- क्या यह युद्ध अवश्यम्भावी था क्या यह टाला जा सकता था।
- जिन उद्देश्यों के कारण यह युद्ध प्रारम्भ हुआ उनकी पूर्ति हुई या उद्देश्य और जुडते चले गये या परिणाम इस युद्ध के वो निकले जिनकी आशा नहीं की जा सकती थी।
- क्या युद्धग्रस्त देशों ने युद्ध की धटनाओ पर अपना नियंत्रण रखा या घटना चक्र उनके नियंत्रण से बाहर हो गया।

20.1 प्रस्तावना -

युद्ध जो 1914 में प्रारम्भ हुआ और चार साल और तीन महीने चला कई दृष्टि से मानव इतिहास में विचित्र था। इससे पूर्व के युद्ध जैसे फ़्रांसीसी राज्य क्रांति और नेपोलियन के युद्ध में अपने ही राज्य सम्मिलित थे और जयादा दिनों तक चले 1815 से हर दशक में कहीं ना कहीं युद्ध हुआ और युरोप अकेले में तेरह अलग-अलग युद्ध हुये इनमें वे युद्ध शामिल नहीं है जो यूरोपियन राज्यों ने यूरोप के बाहर लडे। किन्तु अगर साधारण शान्ति नहीं थी तो फिर साधारण-युद्ध नहीं था। ये पहला साधारण संघर्ष था जिनमें 20 वीं शताब्दी के सबसे ज्यादा संगठित राज्य लड़े। जिनको अपने नागरिकों पर पूरा अधिकार था, जिन्होनें आधुनिक औधोगिक उत्पादन शाक्ति का भरपूर उपयोग किया और जिन्होने सुरक्षा और विनाश के नये-नये तरीके आधुनिक तकनकी के आधार पर खोजे। यह पहला युद्ध था जिसने बडे पैमाने पर 19 वीं शताब्दी से विकसित होने वाली अन्तराष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था को जर्जरित कर दिया इस युद्ध में यूरोप के उन राष्ट्रों ने भाग लिया जो लड़ा सामुहिक रूप से शेष संसार पर अपना नियंत्रण रखते थे। यह युद्ध बडे संकल्प से और उन्माद से गया क्योंकि प्रारम्भ में युद्धरत देशों का यह विश्वास था कि वे अपने अस्तित्व के लिए लहू रहें हैं। इसके पश्चात वे उच्च आदर्शों के लिए लड़े यह युद्ध यूरोप में पूर्णतया थकान के बिन्दू तक अथवा विनाश तक लड़ा गया जिसमें अद्वितीय विनाश हुआ कयोकि दोनों ही पक्ष बराबर के थे और युद्ध के लिए बड़े लम्बे समय से तैयारियां कर रहे थे। यह युद्ध जमीन पर, समुद्र पर, समुद्र के अन्दर लड़ा गया। टैंक और हवाई जहाज, युद्धपोत पनडुब्बियओं ने युद्ध को व्यापक बना दिया। नये आर्थिक स्त्रोत और मनोविज्ञानिक युद्ध पद्धति का भी उपयोग किया गया क्योंकि यह जन साधारण का पहला युद्ध था न केवन स्थल सेना, जल सेनाका था औधोगिक उत्पादन और नागरिकों के नैतिक मनोबल का भी बहुत महत्व था। दोनों तरफ का सैनिक नेतृत्व इस प्रकार के युद्ध लड़ने में अपने आपको असमर्थ पाता था। युद्ध जितने कुशल सैनिक पद्धति से जीते गये उतने ही शत्रुओं की गलतियों से भी। ऐसे क्षण भी आए जब नेता नागरिक और सैनिक सभी युद्ध की धटनाओ को नियंत्रित ना करने में अपने आपको असहाय पाते थे।

बिस्मार्क द्वारा लड़े गये युद्ध अपने कूटनितिक और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बहुत ही छोटे युद्ध थे और उनका आधार विशेष लक्ष्य और सीमित जोखिम का था, किन्तु यह विश्व युद्ध शीघ्र ही अपने नेताओं के नियत्रण से बाहर हो गया इसके मूलभूत उद्देश्यों पर दूसरे कई लक्ष्यों का पर्दा पड़ गया। इसके परिणाम युद्धरत देशों के उद्देश्यों से भिन्न निकले।इस तरह यह इतिहास का ऐसा युद्ध था जिसके उद्देश्य में काफी भिन्नता थी एक बडी कीमत इसकी चुकानी पडी और इसके परिणाम भी निकले।

उपरोक्त बात को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि युद्ध के कारणों का विश्लेषण किया जावे।

यूवानी इतिहासकार श्युसीडाइडीज ऐथींस और स्वार्टी के युद्धों का वर्णन करते हुये कहता है कि युद्ध के कारणों को हमें दो भागों में बांटना चाहिये एक दूरगामी अथवा मूलभूत कारण और दूसरे तात्कालिक कारण इस प्रकार कारणों को विभाजित करके समझने में आसानी होती है।

20.2 - दूरगामी कारण

दूरगामी कारणों को हम निम्न भागों में विभाजित करते है :-

20.21 गुप्त संधि पद्धति

20.22 सैनिक वाद

20.23 उग्रराष्ट्रीयवाद

20.24 आर्थिक साम्राज्यवाद

20.25 समाचार पत्र व उनकी भूमिका

20.26 जातिवाद

20.27 नैतिक उद्देश्य

20.28 साम्राज्यवाद और जनमत

20.29 खोये हुए क्षेत्रों की पुन: प्राप्ति का प्रश्न

20.3 अन्तराष्ट्रीय

20.30 अन्तराष्ट्रीय अव्यवस्था

20.31 हैग सम्मेलन की असफलता

20.32 एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्म देता है।

20.33 बिस्मार्क की कूटनीति

20.34 फ्रांस की कूटनीति

20.35 जर्मनी की महत्वकांक्षा

20.36 जर्मनी व इंग्लैण्ड की नौसेना के क्षेत्र में प्रतिद्वन्दता

20.37 जर्मनी की निकटपूर्ण की नीति

20.4 तात्कालिक कारण

20.4 तात्कालिक कारण सराजीवों की हत्या करना

गूच और टेम्परले ने लिखा है कि यह युद्ध डी-डी (Dreaded) सन्धि पद्धति के कारण हुआ जोकि आधुनिक युद्ध का अभिषाप था।

20.21 गुप्त सन्धि पद्धति :

इस पद्धति का विकास 1870-71 के फ्रंन्क्रो-प्रशयन युद्ध से हुआ इसने यूरोप को दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित कर दिया यह दो विरोधी गुट थे। त्रिराष्ट्र मैत्री और त्रिराष्ट्र

सौहार्द त्रिराष्ट्र मैत्री में जर्मनी आस्ट्रिया और इटली सम्मिलित थे। और त्रिराष्ट्र शहाई में इग्लैण्ड फ्रांस तथा रूस शामिल थे।

एक दृष्टि से यह संधियां शांति बनाए रखने के लिए उपयुक्त थी क्योंकि संधि में सम्मिलित होने केले सदस्य एक दूसरे को अपना मित्र समझते थे और अपने आपको युद्ध में फंसाने से एक दूसरे को रोकते थे। परन्तु इसी पद्धति से युद्ध का होना भी अनिवार्य हो गया क्योंकि इसमें यूरोप की सभी बड़ी बडी शक्तियां शमिल थीं। हर एक दल के सदस्य अपने दल के दूसरे सदस्य का समर्थन करना अपना कर्तव्य समझते थे।

चाहे उस मामलें में उनकी प्रत्यक्ष रूप से रूचि हो अथवा नहीं हो क्योंकि ऐसा नाकरने की स्थिति में उस दल की शक्ति कमजोर होती। जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी का उसकी बाल्कन नीति में समर्थन करने के लिए मजबूर था क्योंकि ऐसा न करने पर जर्मनी को अपने अकेले विश्वास पात्र, मित्र को खो देने का भय था इसी तरह फ्रांस का बाल्कन में कोई वित्तीय हित नही था किन्तु वह रूस का समर्थन करने में बाध्य था ऐसा ना करने से द्विराष्ट्र सौहार्द के अस्तित्व को खतरा हो सकता था। शाक्ति संतुलन बिगड़ सकता था औंर जर्मन आक्रमण के समय फ्रांस की सुरक्षा की जो सबसे बड़ी जमानत थी वह समाप्त हो सकती थी। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के विदेश मंत्रालय में अधिकारीगण यह सोचने लगे थे कि राष्ट्र मैत्री के विरूद्ध त्रिराष्ट्र मोहार्द की अखणडता को बनाए रखना आवश्यक है। जुलाई 1914 के संकट में प्रश्न आस्ट्रिया, सर्बिया और बाल्कन प्रति का ही नहीं था बल्कि यह दोनों ही गुटों की प्रतिष्ठा और अखण्डता का प्रश्न था जिसने यूरोप को दो गुटों में विभाजित कर दिया था।

20.22 सैनिकवाद :-

युद्ध का दूसरा सबसे बड़ा कारण जो गुप्त संधियों से जुडा हुआ था वह था सैनिकवाद जिसके दो अर्थ निकलते थे पहला स्थल और जल सैना के खतरनाक और बोझित संगठन जिसमें गुप्तचर, संदेह, भय और घृणा भी सम्मिलित थी। दूसरा अर्थ है कि शाक्तिशाली सैनिक और नौ सैनिक अधिकारियों को शाक्तिशाली वर्ग जो नागरिक अधिकारियों को राजनैतिक संकट के समय अपना प्रभाव जमाने की चेष्टा कर रहा था। बड़ी-2 सेनाओं का गठन जिसमें पुरूष जनसंख्या को सम्मिलित किया गया था। क्रांति के समय और नेपोलियन की देखरेख में बहुत पहले से सेना का गठन प्रारम्भ हो गया था। प्रशा ने इसे और बढाया और विकसित किया। 1 864,66 और 70 के युद्धों मे बिस्मार्क की सफलताओं के कारण प्रशा सैनिक पद्धति को सराहा गया और पूरे यूरोपीयन महाद्वीप में इसका अनुसरण किया गया। फ्रेको-प्रशयन युद्ध के बाद यूरोप की सभी महान शक्तियों ने अपनी स्थल और जल शस्त्र दिन प्रतिदिन बढ़ाने प्रारम्भ कर दिये और वित्तीय बोझ भारी से भारी होता चला गया। जो शस्त्र एकत्र किये गये उनको कथित रूप से सुरक्षा और शांति के हितों की रक्षा के लिए उचित समझा गया। और यह प्रकट किया गया कि इससे सुरक्षा की भावना का जन्म होगा। यह तर्क इसलिए दिया गया कि विधान

सभाओं से धन की आवश्यक स्वीकृति प्राप्त की जा सके। वस्तुत: इसने व्यापक स्तर पर संदेह भय और घृणा देशों में पैदा की। अगर एक देश ने स्थल सेना को बढाया, सामरिक महत्व की रेलों को बिछाया, नये युद्धपोत बनाए तो पडौसी देश ने भी भयभीत होकर ऐसो ही किया इस प्रकार से शस्त्रों के भण्डार को बनाने का एक द्वन्द प्रारम्भ हो गया। यह स्थिति विशेष तौर से 1912-13 के बाल्कन युद्ध के समय और उसके बाद बनी। जब यह प्रकट, होने लगा तो इस युद्ध में बडी शक्तियां भी सम्मिलित हो जाएगी इसको संघी प्रणाली ने और हवा दी। जर्मनी आस्ट्रिया जो इटली की वफादारी के बारे में निश्चित थे विश्वास करने लगे कि अपनी सुरक्षा के लिए उन्हें शस्त्रों को बढ़ाना चाहिए। फ़्रांस ने रूस को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे अपनी सेना और सामरिक महत्व की रेलों का निर्माण जर्मनी के विरूद्ध करें और इसके लिए पचास अरब फ्रेंन्क का सा भी उसको दे दिया इस शर्त पर कि, वह इसका उपयोग उपरोक्त कार्य में करें। रूस ने फ़्रांस को उकसाया कि वह अपनी अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि दो साल मे बढ़ाकर तीन साल की कर दे। इसलिए सभी महाद्वीपी देशों में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर की गई। रूसी युद्ध मंत्री ने कहा-

"रूस तैयार है फ़्रांसको भी होना चाहिए।" इस प्रकार शस्त्रों की होड बढने लगी न केवल व्यक्तिगत रूप से किसी ईशा को सुरक्षा देने के लिए बल्कि उस गुट को शक्ति शाली बनाने के लिए भी जिनसे उनका संबंध है।

सैनिक वाद का एक अर्थ यह भी है-कि एक ऐसे प्रभावशाली सैनिक व नौसैनिक अधिकारियों का होना जिनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण यह हो कि शीघ्रता से युद्ध का होना अगर अवश्यभावी नहीं है तो सम्भव तो है ही। इस प्रकार के व्यवसायिक योद्धाओं के लिए युद्ध के कारण उनको शीध्र पदोन्नति की और महान सम्मान की उम्मीदें बढ़ जाती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह केवल अपने व्यक्तिगत-स्वार्थो के लिए ही युद्ध करते थे। व्यक्तिगत उद्देश्यों के अतिरिक्त सभी सैनिक अधिकारियों में उच्च श्रेणी का राष्ट्रीय सम्मान और देश भक्ति भी थी और वे अपना पुनीत कर्तव्य भी समझते थे कि शस्त्रों की सहायता से अपने देश की रक्षा करें। रात दिन जनरल स्टाफ कम से कम सम्भावित समय में अपने पर होने वाले आक्रमण से निपटने के लिए तैयार रहता था। सैनिक अधिकारी साधारणतया इस सिद्धात में भी विश्वास करते थे कि आक्रमणात्मक युद्ध अधिक लाभकारी है इसका अर्थ शत्रु पर उस समय वार करना जब वह सेना की पूरी तैयारी कर ही रहा हो। दूसरा यह भी दृष्टिकोण था कि शत्रु का देश ही रण-भूमि बने। ना कि अपना देश इससे शत्रु का आर्थिक विनाश, राजनैतिक, और मनो वैज्ञानिक मनोबल का ह्रास होता है। इसलिए राजनैतिक संकट के समय सैनिक अधिकारी शीघ्र ही इस निर्णय पर पहुँच जाते ये कि युद्ध का होना आवश्यंभावी है। और अपने नागरिक, प्रशासनिक अधिकारियों को प्रभावित करने की चेष्टा करते थे- कि वह जहां तक शीध्र सभव हो उनको इसकी अनुमति प्रदान करने का लाभ उनको मिल जाएं किन्तु साधारण सेना कि लामबंदी (Mobilization) सैनिक दृष्टिकोण युद्ध को अनिवार्य बना देता है और लामबंदी जब एक बार प्रारम्भ हो जाए तो फिर इसको रोकना असम्भव है। यह सैनिक वाद की सबसे बड़ी एक बुराई है। और यही एक ऐसा संकट है कि जिसको कूटनीतिज्ञ ठंडे दिमाग से रोकना चाहे तो नहीं रोक

सकते और तब सैनिक नेता युद्ध का निर्णय शीघ्रता के साथ लेने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करतें है।

सैनिकवाद की एक दूसरी बुराई यह है। जनरल स्टाफ की योजनाएं तकनीकी होती है और बहुत ही गुप्त तरीके से तैयार की जाती है ना वो केवल सदन बल्कि जनता से भी गुप्त रखी जाती थी। अक्सर विदेश मंत्री को भी बात की जानकारी नहीं होती थी अगर होती भी तो वह उस तकनीकी योजना के महत्व को समझ नहीं सकता था। इंग्लैण्ड का विदेश मंत्री सर एडबर्ग गिरे कहता है कि 1906 और 1911 के बीच उसकी उन योजनाओं के बारे मे कुछ भी जानकारी नही थी जो अंग्रेजी और फ्रांसीसी सैनिक अधिकारी आंगल फ्रांसीसी सैनिक सहयोग के लिए उत्तरी फ़्रांस में बना रहे थे इसी प्रकार से रूस में विदेश मंत्रालय के एक अधिकारी का जब यह बताया गया कि रूस के सैनिक अधिकारियों ने आस्ट्रिया के विरुद्ध आंशिक लामबंदी की योजना बनाली है उसने इस योजना को एक मूर्खता कहा।

सैनिक वाद की एक अन्य बुराई यह थी कि जनरल स्टाफ अपनी योजनाओं को गुप्त रूस से बनाते थे। और यह समझते थे कि यह सैनिक विजय के लिए सबसे उत्तम है किन्तु वह उसकी राजनैतिक गुत्थियों के बारें में कोई परवाह नहीं करते थे और जब युद्ध अवश्यंभावी हो जाता था तब प्रशासनिक अधिकारियों पर बहुत दबाव पड़ता था कि जो योजना सैनिक अधिकारियों ने गुप्त रूप से बनाई है उसे स्वीकृति प्रदान करें इस प्रकार का सैनिक दृष्टिकोण सभी देशों में पाया जाता था किन्तु यह बात दूसरी है कि किस देश में और कहां तक सैनिक अफसर प्रशासनिक अधिकारियों पर प्रभावी होते हैं।

इसी प्रकार से बड़े-2 उधोगपति भी और शस्त्रों के निर्माण करने वाले प्रशासनिक अधिकारियों पर दबाव डालते थे। कुछ सैनिक अधिकारी इस बात में विश्वास करते थे कि निवारक युद्ध लड़ा जाना चाहिए। अर्थात जब पड़ोसी कमजोर हो तो युद्ध छेड़ देना चाहिए ताकि उसकों शाक्तिशाली होने से रोका जा सके। इसलिए प्राय: यह कहा जाता है कि जर्मनी 1914 में युद्ध चाहता था। जिससे कि वह सलाववाद से अन्तिम रूप से निपट ले और रूस अपनी सैनिक पुनर्गठन के महान कार्यक्रम ''पूर्ण नही'' कर पाये। इसी प्रकार फ्रांसीसी नेता 1914 में युद्ध चाहते थे जिसके कि जर्मनी अपनी तेज गति से बस्ती हुई जनसंख्या, धन और नौसेना के कारण अधिक शक्तिशाली ना हो जाए। इसी तरह से रूस के सैनिक नेता भी शीघ्रता से युद्ध करना चाहते थे। इग्लैण्ड भी इस बात से खुश था कि उसको बढ़ती हुई जर्मन नौसेना को कुचलने का मौका मिले। हमसे पहले जर्मन नौसेना बढ कर इंग्लैण्ड के लिए खतरनाक ना हो जाए। किन्तु निवारक युद्ध विश्वयुद्ध के लिए कोई निर्णायक कारण नहीं था केवल आस्ट्रिया हंगरी में इस सिद्धान्त का काफी प्रभाव था। क्योंकि आस्ट्रिया हंगरी में साधारणतया यह जाना जाता था कि एक ना एक दिन शीघ्र या देर से सर्विया के साथ संबंध होना है। इसलिए वहां के सैनिक अधिकारी बार-2 कहते ऐसी स्थिति शीध्रता से युद्ध करना ज्यादा अच्छा है। युवराज की हत्या की घटना ने उनको एक अच्छा बहाना प्रदान कर दिया जिससे कि वे महान सर्बिया के खतरे को रौंद डाले।

इस बात में कोई सच्चाई नहीं है कि जर्मन अधिकारी युद्ध का स्वागत इसलिए करना चाहते थे कि इसमें समाजवाद की बढ़ती हुई बाढ़ को रोका जा सके। इसी तरह रूस भी युद्ध को

पंसद करता था क्योकि इससे वह मजदूरों की हड़तालों और क्रांतिकारी बैचानी को कुचलने का अच्छा अवसर प्राप्त कर सके। इसमें भी कोई ज्यादा सच्चाई नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि सैनिकवाद अर्थात् सैना का प्रशासनिक अधिकारियों पर प्रभाव एक गंभीर मामला था। जो तीन पूर्वी राजतंत्रों में देखा जा सकता था जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस, फ़्रांस में यह बहुत कम था और इंगलैण्ड में वस्तुतया था ही नहीं क्योंकि वहां साधारण नागरिक सेना और आधुनिक शोध से अब यह प्रमाणित हुआ है कि जुलाई 1914 के पूर्व के समय में विभिन्न देशों के उच्च सेना अधिकारी राजनयिक सम्बन्धों का निर्धारण नहीं करते थे तथा उन्होनें अपनी युद्ध योजनाएं राजनैतिक नेताओं द्वारा किए गऐ फैसलों के अनुरूप बनाई जुलाई 1914 के संकट में भी जब राजनैतिकों के प्रयत्न असफल होते प्रतीत हुए, तब सेना अधिकारी सक्रिय कार्य करने लगे थे, इससे पूर्व नहीं।

20.23 उग्र राष्ट्रीयता :-

उग्र राष्ट्रीयता युद्ध के बड़े कारणों में से एक कारण था। राष्ट्रवाद बहुत ही विचित्र और कुटिल तरीकों से काम करता था इसने जर्मनी और इटली के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका पर्दा की तो दूसरी ओर उसने ओटोमन साम्राज्य को खत्म कर दिया। और आस्ट्रिया के मोनाकी को खण्डित करने की धमकी दी अपने विकृत रूप में इसने सौ साल तक राष्ट्रीय स्वतंत्रता और एकता के नाम पर बाल्कन में अनेक युद्धों को जन्म दिया। यह बाल्कन प्रान्त में इतना महत्व पूर्ण तत्व था कि प्रथम विश्वयुद्ध को प्रत्यक्ष तात्कालिक

गुरूदेव टैगोर ने उग्रराष्ट्रवाद को शान्ति का शत्रु कहा है। राष्ट्रवाद के सिद्धान्त में प्रथम विश्व युद्ध युरोपियन देशों की दो परस्पर विरोधी पद्धतियों के बीच शक्ति परीक्षण था। राष्ट्रवाद को लौर्ड एक्टन ने एक मूर्खतापूर्ण खूनी सिद्धान्त बताया है जिसने बहुत नुक्सान पहुँचाया। इसने यूरोप को धृणा और संदेह का पिटारा बना दिया किसी अन्य क्षेत्र में राष्ट्रीय भावनाएं इतनी भड़कीली नहीं थी जितनी जर्मनी में थी।

इसने राष्ट्रीय गौरव को उत्तेजित किया और जर्मनी को इतना महत्वाकांक्षी बना दिया कि वह विश्व शान्ति के लिए खतरा बन गया। हर राष्ट्र के लोग अपनी सभ्यता संस्कृति आचार विचार को अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ समझने लगे। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों पर प्रभावी होने लगे। उग्रराष्ट्रीयता का नशा जर्मनी, फ़्रांस आदि देशों पर ही नहीं चढा वरन बाल्कन प्रायद्वीप के युनान सर्बिया आदि छोटे-2 देशों पर भी चढ गया। उग्र राष्ट्रीयताकी लहर में बहकर राज्यों को अन्य देशों के हितों, स्वार्थो और इच्छाओं का कोई ध्यान नहीं रहा। प्रत्येक राष्ट्र ने केवल अपनी शक्ति समृद्धि और व्यापार को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया। इससे ओपनिवेशिक प्रतिस्पर्घा पैदा हो गई। यूरोप का वातावरण विशान्त बने गया। यूरोपियन देश गुटबंदी में फंस गये।

20.24 आर्थिक साम्राज्यवाद :-

इसमें अन्तराष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्वता आती है। जो इग्लैण्ड में औधोगिक क्रांति का परिणाम था। जब उधोगों का विकास संसार के अन्य देशों में हुआ और जब वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन किया जाने लगा तो इसने नये बाजारों की खोज और सस्ती कच्ची साम्रगी के नये स्त्रोतों के लिए संघर्ष को जन्म दिया औधोगिकरण के कारण जन संख्या में वृद्धि हुई जिसका

कुछ भाग संसार के उन क्षेत्रों में चला गया जहाँ अभी लोग जाकर बसे नहीं थे और इस तरह महान शाक्तियों में औपनिवेशिक द्वन्द्व तेज हो गया। इसके अतिरिक्त पूँजी को जन्म दिया जिससे विदेशों में नियोजन की आवश्यकता बढ़ी और इसने आर्थिक शोषण और राजनैतिक प्रतिस्पर्धा को बढाया। इन कारणों से महान शाक्तियों ने अफ्रीका का विभाजन आपस में कर लिया। चीन में अपने लिए कुछ क्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र हासिल किए तुर्की और अन्य क्षेत्रों में निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। 19 वीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षो में और बीसवीं के प्रारम्भ में नयेबाजार कच्चा माल और उपनिवेशों के लिए संघर्ष बहूत तीव्र हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि इस प्रतिद्वन्द्व में जर्मनी व इटली शामिल हो गए थे। अब तक यह देश राजनैतिक आधार पर शामिल हो गए थे। अब तक यह देश राजनैतिक आधार पर कमजोर व विभाजित थे। अब इन्होने राष्ट्रीय एकता प्राप्त कर ली थी और इस बात के इच्छुक थे कि संसार के विभाजन में अन्य शक्तियों के साथ हिस्सा बटोरने में आगे आए। 1914 तक युरोप की महान शक्तियों ने अफ्रीका के कई भू-भाग पर टुकडे करके अपना अधिकार कर लिया था। चीन में इटली अपने लिए कोई लाभ प्राप्त करने में असफल रहा। रेल निमार्ण के मामले में जो आर्थिक साम्राज्यवाद का महत्वपूर्ण कार्यो में से एक कार्य था क्योंकि इसमें राजनैतिक और आर्थिक दोनों ही हित प्राप्त होते थे। अग्रेंजों ने Cape of Good से Cape of Cairo काहेरा तक रेलवे लाईन का निर्माण किया। रूस ने ट्रांस (Trans Siberea) साइबेरिया की रेलवे लाइन बनाई और जर्मनी ने बर्लिन-बगदाद रेलवे लाइन का निर्माण किया पहली रेलवे लाईन के कारण जर्मनी, बैल्जियम, और फ़्रांसकी महत्वाकाक्षाओं में टकराव आया दूसरी रेलवे लाईन कुछ हद तक रूस, जापान युद्ध के लिए उत्तरदायी बनी। तीसरी रेलवे लाईन ने जर्मनी और त्रिराष्ट्र मैत्री के बीच सन्देह और तनाव उत्पन्न किया।

संरक्षात्मक कर पद्धति

यह आधुनिक औद्योगिक पद्धति के साथ-2 चलती है, आर्थिक साम्राज्यवाद का दूसरा स्वरूप था। पैरिस युद्ध और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उठाये जाने वाले कार्यो ने देशों के बीच तनाव उत्पन्न किया विशेषकर उस व्यक्ति के मस्तिष्क में जोकि बाजार में और पत्र-पत्रिकाओं में है। हमेशा यह खतरा बना रहता था कि बडे-2 व्यापारी उद्योगपति सरकारी सहायता से अपने लिए आर्थिक लाभ प्राप्त करते रहते है। इसने एक शासन में दूसरे शासन के प्रति तनाव पैदा करने की भूमिका बनाई साधारणतया आर्थिक साम्राज्यवाद को युद्ध के एक बड़े कारण के रूप में बढा चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है अक्सर यह कहा जाता है कि जर्मनी के औद्योगिक विकास जिससे इग्लैण्ड को ईर्ष्या थी, इन दोनों देशों के बीच युद्ध को देर-बेदेर अवश्यम्भावी बना दिया यह विचार उचित नहीं है। इस विचार का जन्म इस तथ्य पर आधारित है कि जनसाधारण के मस्तिष्क में आर्थिक प्रतिद्वन्द्वता को बढ़ा चढ़ाकार प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि यह एक ऐसा विषय है जोकि समाज के सभी वर्गो की जेब को छूता है इसलिए इस पर साधारणतया ज्यादा चर्चा की जाती है और संभवतया अन्य प्रश्न जैसे गुप्त सन्धियां, सैनिकवाद और राष्ट्रीयवाद की तुलना में ज्यादा अच्छा समझता है। अक्सर ऐसा भी होता है कि महान व्यपारी व उधोगपति अखबारों के मालिक होते है या अखबारों को नियंत्रित करते है जोकि आपने निजी स्वार्थो के कारण आर्थिक प्रश्नों को बढा चढाकर कर प्रस्तुत करते हे अगर उन कुटनीतिक

पत्रों को पढा जाए जो युद्ध से पहले लिखे गए तो इस बात पर आश्चर्य होता है कि इन कुटनीतिक पत्र व्यवहार में आर्थिक प्रश्नों को बहुत कम स्थान दिया गया है इसके विपरीत एक व्यापारी और पत्र के सम्पादक के मष्तिक में भूत के तरह से घूमता है। आर्थिक प्रतिद्वन्द्वता कम और प्रतिष्ठा सीमाऐं, सेना, नौ सेना, शाक्ति संतुलन, गुप्त संधियां ऐसे प्रश्न है जिनमें कूटनीतिक पत्र व्यवहार में बहुत ज्यादा कागज काले किए गये हैं और हर देश के विदेश मंत्रालयों में इस चीज ने तापमान को खतरे के बिन्दु तक बढा दिया है।

20.25 समाचार पत्रों की भूमिका :

अखबारों के माध्यम से जनमत को विष से भरने, युद्ध का दूसरा कारण है यह सभी महान देशों में किया गया। अक्सर सभी देशों के अखबार राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करते थें, विदेशो में होने वाले घटनाओं को तोड मरोड़ कर पेश करते थे, और उन तथ्यों को छुपा लेते थें, जिसमें शान्ति को बढावा मिले। युद्ध से पहले 40 सालों के कुटनीतिक पत्रों का अध्ययन यह बताता है कि उस समय की सरकारों ने अनेक मामलों में अच्छे संबंध व मैत्री संबंध स्थापित करने की इच्छा दिखायी। किन्तु अपने-2 देशों में उनके इस कार्य में अखबारों के युद्ध प्रिय व्यवहार से बाधा पड़ी। राजदूतों ने और काबीना मंत्रियों ने बार-2 इस बात को स्वीकार किया कि उनके देशों में देश के बड़े-बड़े अखबारों का रवैया मुर्खतापूर्ण है और इसके लिए उन्होनें क्षमा याचना भी की और यह वादा भी किया वे इसको रोकने की चेष्टा करेगे। अगर दूसरा देश भी अपनी प्रेस के प्रति इसी प्रकार नीति का अनुसरण करे। यह प्राय: गंभीर प्रयास थे और युद्ध के पहले 25 वर्षों मे इग्लैण्ड व जर्मनीके संबंधों में देखे जा सकते है। दूसरे मौकों पर मंत्रियों ने प्रेस के आधार पर कुछ लाभ प्राप्त करने की कोशिश की या अपने रवैयों का बचाव किया यह कह कर कि उनके कार्यो की स्वतंत्रता, प्रेस व जनमत के किसी विवादस्पद बिन्दू पर दूसरे देश की बात मान ली ती जनता व अखबारों में इतना हुल्लड मचाया जाता था कि उस मंत्री को कार्य मुक्त कर दिया जाता। इस प्रकार के आरोप कभी कभी सही होते थे। अन्यथा गलत। विशेष कर केन्द्रीय व पूर्वी युरोप में जहां कि सरकारें अपनी प्रेस पर इंग्लैण्ड की तुलना में ज्यादा नियंत्रण रखती थी। फिर भी यह बात सत्य है कि दो देशों के अखबार अक्सर किसी विवादग्रस्त बिन्दू को अतिश्योक्तिपूर्ण उसे बढाते थे और आक्रमण प्रति आक्रमण करते थे, जब तक कि नियमित अखबारी युद्ध प्रारम्भ न हो जाए। यह कार्य जनमत को बहुत प्रभावित करता था और ऐसी उपजाऊ भूमि तैयार कर देता था जिसमें वास्तविक युद्ध का बीजारोपण सरल हो जाए। इसका एक उदाहरण आस्ट्रिया व सरबीया के बीच प्रेस युद्ध है जोकि आर्कड्यूक फर्डीनेन्ट (Arck Duke Ferdinand) की हत्या से प्रारम्भ हुआ जोकि हफ्तों तक चलता रहा। यह एक ऐसा मामला है जिसमें दोनों देशों की सरकारें अपने देश की ओर से क्षमा याचना करतीं अथवा उसको रोकने की चेष्टा करती बल्कि इसके विपरीत उन्होनें जान बूझकर अखबारों को जनमत को उत्तेजित करने की छूट देती। जिससे युद्ध के लिए जोश पैदा किया जाए। सम्भवतया: यह कहना तो अतिश्योक्ति होगी कि आस्ट्रिया व साईबेरिया के अखबारों में ऐसा संर्घष नहीं होता तो युद्ध को टाला जा सकता। किन्तु यह सत्य है कि सरबीयन अखबारों की उग्रता ने काउन्ट डिसूजा (Count Tisza) को अपना मत बदलकर सरबिया के साथ युद्ध को स्वीकार करना पड़ा।

वह प्रारम्भ में युद्ध का कट्टी विरोधी था और उसकी सहमति के बिना सरबीया के विरूद्ध युद्ध प्रारंभ नहीं किया जा सकता था। प्रेस की स्वतंत्रता, सेंसरशिप पत्रकारिता पर उस समय तक बहुत कुछ लिखा गया किन्तु खेद का विषय था कि शासन का प्रेस पर नियंत्रण और प्रेस द्वारा राष्ट्रीयता और युद्ध को प्रभावित करने के विषय पर बहुत कम लिखा गया। बिस्मार्क का यह कथन उस समय की प्रेस की सही दिशा को दर्शाता है। हर देश प्रेस के द्वारा तोड़ी हुई खिडकियों के लिए दोषी ठहराया जाता है जैसे ही कोई विधेयक प्रस्तुत किया जाता है तो दूसरे देश में उसकी घोर प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार प्रेस ने युद्ध की भूमिका तैयार करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। साथ ही उस समय का साहित्य भी इसके लिए उत्तरदायी है। इग्लैण्ड में, दी इगलिशमेन होम (The English man's home) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई और गर्म केक के समान इग्लैण्ड में बिक गई। इस पुस्तक में लेखक यह दर्शाता है कि एक बार जर्मनी ने इग्लैण्ड पर आक्रमण किया और जर्मन सेना का कुछ भाग, इग्लैण्ड की भूमि पर उतर आया। किन्तु इग्लैण्ड के मित्र ने इग्लैण्ड का साथ दिया और जर्मन की नौ सेना को इग्लैण्ड से खदेड़ दिया अंग्रेज लोगों के मस्तिषक पर इस पुस्तक ने यह प्रभाव जमायाकि जर्मनी इग्लैण्ड का शत्रु है और इग्लैण्ड को अपनी जल सेना की बढोतरी करनी चाहिए और इस प्रकार लेखक ने अपने देश को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। एक अंग्रेज पत्रिका में एक निबंध छपा कि हमें जर्मनी को नष्ट कर देना चाहिए। एडिनबर्ग रिव्यू Edinburge Review जोकि एक मासिक पत्रिका थी, उसमें एक आर्टिकल छपा जिसमें यह बताया कि एक जर्मन की मृत्यु इग्लैण्ड में एक अंग्रेज की सुख समृद्धि का प्रतीक है, इससे यह स्पष्ट होता है कि इंग्लैण्ड की खुशहाली व विकास, जर्मनी के विनाश पर निर्भर करता है। फ़्रांस में भी जहां पर युद्ध निवृत्तिवाद अधिक था कभी-2 प्रतिशोध की भावना में राष्ट्रीय युद्ध करने का शोर सुनायी देता था, जर्मनी में प्रेस, इग्लैण्ड के प्रति बहुत ही शत्रुता बरतता था इसी तरह फ़्रांस के समाचार-पत्र जर्मनी के विरूद्ध लिखा करते थे।

इंग्लैण्ड के समाचार पत्रों में केसर विलियम की कटू आलोचना की जाती थी। 1914 में रूस में मोटी-2 सुर्खियों मे यह लेख छपा "रूस तैयार है, फ्रास को भी तैयार रहना चाहिए।" इसको पढकर केसर विलियम बहुत क्रोधित हुआ अब तक यह बताया गया कि समाचार पत्र दो देशों में मतभेद का कोई प्रश्न चुन लेते थे तथा उस पर तब तक उसके उत्तर प्रतिउत्तर में लगे रहते थे जब तक कि नियमित ''समाचार पत्र युद्ध नहीं शुरू हो जाता था, परन्तु ऐसे तर्क देना "समाचार पत्रों" की भूमिका की आवश्यकता से अधिक महत्व देना होगा। उस समय की सरकारें अक्सर समाचार पत्रों की अवहेलना कर सकती थी। वह समाचार पत्रों पर दबाव डाल कर विशेष प्रकार के लेख छापने को भी कह सकती थी वास्तव में उस समय देखने को आया समाचार पत्रों के विचारक भी प्रभाव डालते थे जब विदेश मंत्रालय तथा मंत्रीमण्डल के विचार भी समाचार पत्रों के विचारों के अनुरूप हो। जहां तक जुलाई 1914 के संकट का प्रश्न है यह देखा गया है कि किसी देश में समाचार पत्रों ने सरकारों को युद्ध के लिए नहीं उकसाया।

20.26 जातिवाद :

19वीं शताब्दी के अन्त तक दो जातिएं आन्दोलन बाल्क्न क्षेत्र में चल रहे थें, एक था, अखिल स्लावबाद (Pan SLAVISM) दूसरा था अखिल जर्मनवाद (Pan Germanism)

20.26.1 अखिल स्लाववाद:

यह आन्दोलन कैट कौफ (Kat Koff) ने रूस में प्रारम्भ किया था, उसका उद्देश्य था कि समस्त दक्षिण पूर्वी युरोप पर रूस का नियंत्रण होना चाहिए। बालकन प्रान्त में रहने वाले अधिकांश लोग स्लाव जाति के थे, किन्तु अभी वे एकता के सूत्र में बधें नहीं थे, हजारों स्लाव, आस्ट्रिया के नागरिक थे रूस का सम्राट जाति से स्लाव था। इस तरह बाल्कन व रूस में रहने वाले लोगों में जातिय आधार में सद्भावना थी। रूस का सम्राट इस अखिल स्लाववाद का नेता था। उसने इस आन्दोलन को प्रोत्साहित किया क्योंकि वह बाल्कन प्राप्त में रूसी हितों को सुरक्षित करना चाहता था। अखिल स्लाववादियों ने कई सम्मेलन आयोजित किए थे। इस तरह के सम्मेलन की अध्यक्षता जार ने की थी और उसने सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों को अपना भाई सम्बोधित किया था। इस जातिय आन्दोलन के पीछे राजनैतिक उद्देश्य भी थे।

20.26.2 अखिल जर्मनवाद:

ट्रीश्चय Treitche और निश्चय (Nietzsehe) दो जर्मन राजनैतिक विचारक थे और उन्होने अखिल जर्मनवाद को प्रारम्भ किया। 1894 में इसकी स्थापना की गई थी, जिसमें समस्त जर्मन की एकता को जोर दिया गया था, और कहा गया था कि पितृ राज्यों के हितों को आगे बढाया जाय। इस आन्दोलन के कुछ सदस्य खुलेआम जर्मनी के आस पास की सीमावर्ती क्षेत्रों पर अधिकार करने की बात करते थे। इस वर्ग ने आक्रमणात्मक सम्राज्यवाद को हवा दी और सारे वातावरण में भय उत्पन्न कर दिया। जिसके कारण युद्ध हुआ।

इस आन्दोलन के कुछ समर्थकों का यह कहना था कि जर्मन सभ्यता सर्वश्रेष्ठ है और-जर्मन, ईश्वर की चुनी हुई संतान हैं। इस लिए उनका जन्म संसार में हुकूमत करने के लिए हुआ। यह आन्दोलन इस प्रकार से विश्व राजनैतिक पर आधारित था। निकटपूर्व (Near East) में इस दोनों वादों अखिल स्लाववाद व अखिल जर्मन वाद का टकराव हुआ। जर्मनी, बाल्कान प्रायद्वीप, में अपना नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकता था, जब तक रूस उसमें रूचि रखता था। दोनों आन्दोलन दक्षिण पूर्वी यूरोप में बढने की चेष्टा कर रहे थें। एक वाद (Ism) उत्तर से पूर्व की और विस्तार चाहता था तो दूसरा वाद पश्चिम से पूर्व की ओर और विस्तार चाहता था और इन दोनों आन्दोलनों को कहीं न कहीं मिलना था। और जहां कहीं भी यह मिलेंगे वहां युद्ध अवश्य होना था। जब तक यह मिले नहीं युद्ध नहीं हुआ। बालकन प्रायद्वीप इन दोनों के बीच विवाद का कारण था और अन्त में युद्ध हुआ क्योंकि एक तरफ रूस के हित और दूसरी तरफ आस्ट्रिया व जर्मनी के हित टकराए। ऐसी परिस्थिति में युद्ध को टाला नहीं जा सकता था।

20.27 नैतिक उद्देश्य जोकि राजनीति से जुडे हुए थे:

जब कोई राष्ट्र दुनिया के अन्य देशों को सभ्य बनाने का लक्ष्य निर्धारित करते तो नैतिक उद्देश्य राजनैतिक उद्देश्यों के बहुत निकट आ जाते हैं। फ्रांस एक ऐसा राष्ट्र था, उसका एक कुटनीतिज्ञ जुलियस फेरी इन्हीं उद्देश्य की पुर्ति हेतु फ्रांसीसी साम्राज्य का विस्तार चाहता था। उस समय के प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखकों ने उसके इस विचार का समर्थन किया।

इसी प्रकार प्रो0 सिली की लिखी हुई पुस्तक The Expansion of England 1883 में प्रकाशित हुई जिसमें लेखक ने यह बताया कि अविकसित जातियों को सभ्य बनाने के महान अवसर इग्लैण्ड को उपलब्ध है अगर उसकी इन अवसरों का उपयोग करना चाहिए। इसके पश्चात् जर्मन प्रो0 (Treitche) ट्रिश्चय ने भी सम्राज्य वाद का पक्ष लिया। क्योंकि साम्राज्यवाद के माध्यम से जर्मन संस्कृति का विस्तार चाहता था। कैसर विलियम ने यह घोषणा भी की थी कि ईश्वर ने हमें संसार को सभ्य बनाने को कहा है और हम मानवीय विकास के पुजारी है। यहां तक रूस भी एशिया को सभ्य बनाने में अपना कर्त्तव्य समझने लगा। इस तरह के विचारों में विश्वयुद्ध के बीच मौजूद थे।

20.28 साम्राज्यवाद और जनमत:

जनमत की मूर्खता का सबसे बड़ा उदाहरण यह था कि वह साम्राज्यवाद का समर्थन करता था। यह सत्य है कि फ्रांस, इग्लैण्ड और इटली में प्रतिक्रिया का युग आया किन्तु इन देशों के कुटनीतिज्ञ भी साम्राज्यवाद का समर्थन करने लग गये थे। साम्राज्यवाद एक सुन्दर खेल था जिसमें खिलाड़ियों के लिए बडी बडी बाजी लगी हुई थी और ना खत्म होने वाला उत्साह, खिलाडी थे, उस समय इस प्रकार का खेल, खेलने के अयोग्य थे। इस प्रकार के साम्राज्यवाद ने युद्ध के बीज बोए।

20.29 इररिडेन्टिस्म (IRREDENTISM)

यह एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ है वेक्षेत्र जिनको वापस नही लिया जा सका। जो राजनैतिक, भौगोलिक और नैतिक आधार पर एक राष्ट्र और एक देश से जुडे हुए किन्तु दूसरे देश ने उन पर कब्जा कर रखा है। यूरोप में इस प्रकार के कई क्षेत्र थे और जिन देशों ने अपने-2 क्षेत्र खो दिए थे वे उन्हें पुन: प्राप्त करना चाहते थे। इस तरह इस विचारधारा ने बहुत से राष्ट्रो को युद्ध के लिए अग्रसर किया महत्वपूर्ण ऐसे क्षेत्र थे, एल्साम और लोरेन, ट्रिस्ट (Trieste) और टाइरॉल। फ्रान्स एल्मार, लोरेन वापस लेना चाहता था जो जर्मनी के पास थे। इटली, ट्रिस्ट व टाइराल (Tyrole) लेना चाहता था कि किन्तु यह क्षेत्र आस्ट्रिया के क्षेत्र में थे।

दूसरे महत्वपूर्ण ऐसे क्षेत्र थे बोसनिया (BOSNIA) हरजेगोविना (HERZE-GOVINA) सन्जाक ऑफ नावी बाजार (Sanjak of Novi Bazar) यह तीनों क्षेत्र सरबिया के उत्तर में थे, जातीय आधार पर सरबीया इन तीनों क्षेत्रों पर नियंत्रण रखना चाहता था किन्तु यह आस्ट्रिया के पास थे। बल्गेरिया, महान बल्गेरिया का सपना देख रहा था। बड़े दुर्भाग्य की बात यह थी कि रूस, कुस्तनतुनिया को ऐसा ही क्षेत्र समझता था, और यह उसकी मान्यता थी कि उसकी कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करने का हक है। इसलिए फ्रांस, सरबिया और रूस युद्ध के

इच्छुक थे, जिससे वह इन क्षेत्रों पर अधिकार कर ले और जब युद्ध शुरू हुआ तो एक रूसी दूत ने कहा कि यह एक छोटा सा युद्ध है और रूस से इसको थोडा सा ही लाभ होगा। और वह कुस्तुनतुनिया पर कब्जा कर लेगा । इस प्रकार IRREDENTISM भी युद्ध का कारण बना।

20.3 अन्तराष्ट्रीय अव्यवस्था और अराजकता :

यूरोप के देशों में अन्तराष्ट्रीय संबंधों और शान्ति और राष्ट्रीय सुरक्षा की जमानत के लिए कोई प्रभावशाली पद्धति विकसित नहीं हुई थी। सारे देश युद्ध को राष्ट्रीय नीति का एक साधन समझते थें। वियेना, पैरिस और बर्लिन और फिर बाद में यूरोप की संयुक्त व्यवस्था, यह सब विशेष उद्देश्यों से बुलाए गये थे इसलिए यह स्थाई तौर से निरन्तर कार्य नहीं करते थें। हर एक राष्ट्र यह समझता था कि वह एक जंगल के संसार में रहता है कभी उस पर हमला किया जा सकता है। इसलिए उसे हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए ज्यादा अच्छा तो यही है कि अपने पड़ोसी पर आक्रमण करने की शाक्ति उसमें होनी चाहिए। दूसरे पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करना राष्ट्रीय सफलता की सबसे बड़ी परीक्षा थी। दूसरे के क्षेत्र को जीत कर विलय करना सम्मान और प्रशंसा का पात्र बना देता था। लेकिन कोई भी देश अपने आपको अकेला चाहे रक्षात्मक हो अथवा आक्रमणात्मक हो शक्तिशाली नहीं समझता था इसलिए उसे हमेशा मित्रों की आवश्यकता रहती थी अनिवार्य रूप से कूटनीतिक समझौते गुप्त होते थे वरन् सारी योजनाएं विफल हो सकती थीं। 1870 के पश्चात् सैनिक संधियों की शुरूआत बिस्मार्क ने की थी। जिसके परिणाम स्वरूप यूरोप दो भागों में विभाजित हो गया। एक त्रिराष्ट्र सौहार्द और एक त्रिराष्ट्र मैत्री जब एक बार संकट उत्पन्न हुआ तो फिर अन्तरराष्ट्रीय अराजकता इस संकट को टाल नहीं सकती थी।

20.31 हैग (HAGUE) सम्मेलन की असफलता :

सभी यूरोपीयन शक्तियों के लिए सहज शांति एक बहुत बडा बोझ था। उदाहरण के लिए सैनिक खर्चा 1872 से 1912 के बीच विभिन्न देशों का इस प्रकार बढ़ गया था जर्मनी 335% रूस 214%, इटली 185%, इग्लैण्ड 180%, अस्ट्रिया हंगरी, 155% और फ्रांस 133%।

इसको बनाए रखने के लिए ज्यादा से ज्यादा कर लगाए जाने लगे जिससे समाज के सभी वर्गों में बेचैनी बढी। एक व्यापक शांति आंदोलन ने जन्म लिया जिसका उद्देश्य यह था कि राष्ट्रों के बीच सभी विवादों का समाधान युद्ध के स्थान पर पंच पद्धित से किया जाए। अलफ्रेड 'नोबेल ने अपनी पूँजी के एक भाग को उस राष्ट्र को वार्षिक देने के लिए कहा जो। शान्ति के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में तथा साहित्य के क्षेत्र में महान सेवा करे ।एंड्री व कारनेगी ने शान्ति के प्रचार के लिए काफी पैसा खर्चा किया।

1898 में The Future of war नामक पुस्तक की रचना Ivan Block ने की जिसमें लेखक ने यह बताया कि आधुनिक परिस्थितियों में युद्ध असंभव है। इससे विश्वव्यापी आर्थिक हानि और भुखमरी फैली। The great Ilusion नामक पुस्तक अंग्रेज नोरमन नामक लेखक ने प्रकाशित की जिसमें यह बताया गया कि आधुनिक और आर्थिक स्थिति सैनिक सफलताओं को व्यर्थ बना देती है। चाहे युद्ध जीत लिया जाए किन्तु आर्थिक जीवन की

कठिनाईयों को जीता नहीं जा सकता। 1898 में निकोलस द्वितीय ने एक अन्तरराष्ट्रीय गोष्ठी बुलाने का सुझाव दिया जिससे कि वर्तमान के शस्त्रों की बढ़ोतरी को रोका जा सके क्योंकि इस प्रकार के शस्त्रों की बढ़ोतरी सभी देशों के लिए हानिकारक है। परिणामस्वरूप हैग में पहला शान्ति सम्मेलन प्रारम्भ हुआ जिसमें 26 देश शामिल हुए किन्तु राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा के कारण हैग सम्मेलन को विशेष सफलता नहीं मिली दूसरा सम्मेलन 1907 में हुआ जिसमें 44 देशों ने भाग लिया किन्तु शस्त्रों को सीमित करने में इसको भी कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली लेकिन हेग में एक न्यायालय अवश्य स्थापित कर दिया जो राष्ट्रों के बीच स्थाई पंच न्यायालय के रूप में कार्य करे अगर कोई देश अपने विवाद उसे सौंपना चाहे तो।

हेग सम्मेलन अपने मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा क्योंकि इसके बाद कई छोटे-2 युद्ध हुए। इससे यह स्पष्ट होता है कि युद्ध को समाप्त करने के लिए संसार के देश गंभीर इरादे नहीं रखते थे अगर हेग सम्मेलन अपने उद्देश्य में सफल हो जाता तो संभव है प्रथम विश्व युद्ध को टाला सकता था।

20.32 एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्म देता है यह बात कई बार प्रमाणित हो चुकी है। प्रथम विश्वयुद्ध 1870-71 में लड़े गये फ्रेंन्कों प्रशियन युद्ध का ही परिणम हैं। इस युद्ध के बाद फ्रांस और जर्मनी में 1871 से 1914 तक शत्रुता बनी रही जर्मनी की ओर से बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य 1871 की व्यवस्था को बनाए रखना था। और जर्मनी के लिए कम से कम एक पीढी की शांति की जमानत चाहता था जिससे की वह अपनी नयी प्राप्त की हुई राष्ट्रीय एकता को संगठित कर सके। उसने यह घोषणा भी की थी कि जर्मनी एक संतुष्ट राज्य हैं। जहां तक फ़्रांस का प्रश्न है एक बार जब प्रतिशोध की भावना से उत्तेजना और निवारक युद्ध के भय की संभावना खत्म हो गई तो उसका मुख्य उद्देश्य मित्र ढूंढना था। जिसके कि वह अपने आपको मित्रहीनता से बचा सके। जो 1871 में उसकी हार का कारण बना इस दृष्टि से दोनों शत्रुओं का मुख्य लक्ष्य रक्षात्मक उपाय था ना कि आक्राणात्मक। यहां तक कि ऐल्सास और लारेन को पुन: प्राप्त करने की इच्छा से ज्यादा फ़्रांस को चिन्ता युरोप में जर्मनी की नयी प्रभुसता को चुनौती देने का उपाय तलाश करने की थी। जर्मनी ने पश्चिमी और केन्द्रीय युरोप में अपने आपको सुपरपावर बना लिया था अब तक यह भूमिका फ़्रांस की थी, तथा शक्ति संतुलन को बिगाड़ दिया था। कई शताब्दियों में पहली बार शक्ति संतुलन में फ़्रांस अबखतरनाक नहीं रहा था बल्कि इंग्लैण्ड की भांति उसकी नीति का मुख्य लक्ष्य यूरोप में पुन: शक्ति संतुलन बनाना था।

इंग्लैण्ड इस कार्य में फ्रांस की कोई सहायता करने में इच्छुक नहीं था। क्योंकि इंग्लैण्ड ने यूरोप की पांच बडी शक्तियों में स्वाभाविक ही शक्ति संतुलन देखा जबकि इससे पहले यूरोप में चार ही शक्तियां थी। और वह आस्ट्रिया-हंगरी और प्रशा की बजाए फ़्रांस अथवा रूस को युरोप की शाक्ति संतुलन के लिए खतरा समझता था। इसलिए उसने जर्मनी की बढ़ती हुई सत्ता की गुत्थियों को नही समझा। यहां तक कि 1904 में भी फ़्रांस को ही अपना मुख्य शत्रु समझता था उसके शाक्ति संतुलन की विचारधारा भी फ़्रांस और इटली से भिन्न थी। दुकानदारों का एक राष्ट्र होने के नाते जोकि विश्व के बैंकर के रूप में विकसित हुआ, इंग्लैण्ड हमेशा बैंक

में अपनी बचत रखना पसंद करता था जिसकी जमानत पर वह अपनी आवश्यकताओं के लिए धन प्राप्त कर सके और जब यह बचत कम होने लगी तो अपने प्रयासों से फिर बढ़ा दे। युरोप के प्रति उसका यही दृष्टिकोण था और संविधान की भातिं जिसमें और बैलेंस की व्यवस्था है वह सभी देशों की स्वतंत्रता को सुरक्षित भी करना चाहता था। फिर भी वह अपनी ओर से किसी युरोपियन समस्या में उलझना भी नहीं चाहता था जब तक उसको यह विश्वास ना हो जाए कि कोई एक सत्ता' इतनी शक्तिशाली हो गई है कि वह यूरोप की स्थिरता को चुनौती दे, तभी वह अपने आपको उसके विरूद्ध शक्ति संतुलन बनाए रखने के लिए धकेलता था। उसकी परम्पराएं, उसके हित, यूरोप के प्रति उसका कर्तव्य इन सबको वह अपनी शानदार पृथ्थ्यकरण की नीति में समाये रखता था।

20.33 बिस्मार्क की कूटनीति :

जब बिस्मार्क ने इंग्लैण्ड की पृथ्थ्यकरण की नीति को देखा तो उसने अस्ट्रिया-हंगरी को अपना बड़ा साथी बनाया। इससे पहले तीन सम्राटों का संध 1873 में समाप्त हो चुका था। दो जर्मन शक्तियों का द्वि गुट 1879 में बना परन्तु कुछ वर्षो तक गुप्तरहा और इसी ने 1882 ने त्रिगुट की नींव डाली। 1878 के बर्लिन सम्मेलन ने आस्ट्रिया को बिस्मार्क का बड़ा साथी प्रमाणित किया और रूस को फ्रांस का संभावित मित्र बनने के लिए छोड़ दिया। 1879 की द्विगुट संधि ने अस्ट्रिया-हंगरी को जर्मन सहायता का विश्वास दिलाया, अगर उस पर रूस की और से ओर से आक्रमण होता है तो जर्मनी उसका साथ देगा ! इस प्रकार यह एक रक्षात्मक संधि थी। बिस्मार्क ने रूस को फ़्रांस से साथ मिलने से रोकने के लिए 1881 में ड्राईकेसरवंध में शामिल कर लिया। जो व्यवस्था 1887 तक रही और 1887 में उसने रूस के साथ रिइन्श्योरेंस की संधि की 1883 में रोमानिया भी त्रिराष्ट्र मैत्री ट्रिपल एलाइन्स में शामिल हो गया।

फ़्रांस की कूटनीति :

त्रिराष्ट्र सोहार्द की नींव 1893 के फ्रांस रूसी मैत्री से बनी जब 1890 में बिस्मार्क जर्मन चांसलर नहीं रहा तो 1887 की रिइन्श्योरेस संधि की पुनरावर्ती नहीं हुई। इसलिए जब फ़्रांस ने अपने अकेलेपन को मिटाने के लिए रूस से सम्पर्क किया तो रूस ने उसका अच्छा उत्तर दिया। इसके अतिरिक्त रूस को फ्रांसीसी मित्रता की भी काफी जरूरत थी। इस तरह 1893 के अंत में रूस और फ़्रांस के बीच एक सैनिक समझौता हो गया। परन्तु इसकी शर्तो के बारे में जानकारी 1918 तक नहीं मिली। और इस प्रकार 1893 में फ्रांस ने बिस्मार्क की कूटनीति को विफल कर दिया।

1902 में इग्लैण्ड ने जापान के साथ संधी कर ली यह संधी रूस के विरूद्ध थी लेकिन जर्मन की नौसेना की बढ़ती हुई शक्ति के कारण और जर्मनी की कूटनीतिक भूलों के कारण इग्लैण्ड, फ़्रांस की ओर झुकता हुआ दिखाई दिया। कैसर ने बोवर नेता कूगर को तार भेजा तो इससे इग्लैण्ड को बहुत ही लज्जा आई। किंगएडवर्ग सप्तम ने पेरिस की यात्रा की वहां उसका भव्य स्वागत किया गया। फ़्रांस के राष्ट्रपति ने लन्दन की यात्रा की और इस प्रकार अप्रेल 1904 में इग्लैण्ड फ़्रांस के बीच एक मैत्री संधी हुई जो पचास साल से भी ज्यादा जीवित रही ये

समझौता मूलतय: औपनिवेशिक समझौता था। तीन वर्षों के बाद ये समझौता त्रिराष्ट्र सौहार्द में बदल गया। जब इग्लैण्ड और रूस के बीच 1907 में एक सैनिक समझौता हुआ तो यूरोप दो शिवरों में बंट गया

जब से युद्ध का आरम्भ हुआ तब से यूरोप के इस विभाजन को युद्ध का महत्वपूर्ण कारण माना गया है परन्तु ये कहां तक प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ होने के कारण बने ये तो इस पर निर्भर था कि विभिन्न देश इन संधियों तथा समझौता से किस सीमा तक बाध्य थे। यद्यपि त्रिराष्टीय सौहार्द 1914 तक निरन्तर नवीनीकरण होता रहा तब भी ईटली ने समय समय पर फ़्रांस, रूस तथा ब्रिटेन में इन देशों के साथ मिलकर युद्ध लड़ा जर्मनी तथा आस्ट्रिया के साथ मिलकर नहीं यद्यपि 1882 से त्रिराष्ट्र मैत्री का सदस्य रहा था। इसी प्रकार मोरक्को संकट के समय रूस ने फ़्रांस का साथ नहीं दिया। 1912-13 के दौरान दोनों शिविरों के प्रमुख सदस्यों ब्रिटेन तथा जर्मनी ने युरोप में शान्ति बनाये रखने के लिए मिलकर प्रयत्न किये। महायुद्ध के आरम्भ होने से कुछ ही साप्ताह पूर्व जर्मनी तथा ब्रिटेन ने बगदाद रेल मार्ग से संबंधित एक समझौता हुआ था इसका अर्थ यह है कि युरोप का दो शिविरों में विभाजित होना निरर्थक था। सभी देशों के सैनाध्यक्षों ने जो युद्ध योजनाएं तैयार की हुई थी वे इन्हीं संधियों और समझौता के अनुरूप थी। जुलाई 1914 की संकटपूर्ण स्थिति मे भी विभिन्नदेशो में विभिन्न फैसले किये गये तथा कदम उठाये गये वे भी उनके मध्य समझौतो के अनुरूप ही दें। इसलिए कहा जा सकता है कि दो शिविरों में इस विभाजन ने युद्ध को अवश्यमभावी नहीं बनाया।

20.35 जर्मनी की महत्वाकांक्षा :

1871 में जब जर्मनी का एकीकरण हुआ तो उसके चांसलर ने 1870 से 1890 तक रक्षात्मक नीति का अनुसरण किया। उसने अपना यह उद्देश्य युद्ध के द्वारा नही बल्कि अपनी कूटनीतिकता से पूरा करना चाहा। इसके लिए उसने त्रिराष्ट्र मैत्री की जिसका प्रतिरोध उसके पतन के बाद त्रिराष्ट्र सौहार्द में प्रकट हुआ। यूरोप इस प्रकार से दो प्रतिद्वन्द्वी गुटों में विभाजित हो गया ऊपरी रूप से शक्ति संतुलन पुन: स्थापित हो गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि त्रिराष्ट्र मैत्री ज्यादा शक्तिशाली थी। जर्मनी यूरोप की सैनिक दृष्टिकोण से महान शक्ति बन गया था और अब वह विश्व मे, अपनी धाक जमाना चाहता था। 1900 तक महान शक्तियों ने संसार को आपस में बांट लिया था किन्तु जर्मनी का हिस्सा उसके शक्ति के अनुपात में नही था और उसने इसका प्राप्त करना चाहा। जर्मनी की क्या महत्वाकांक्षा थी ? यह मालुम करना है। जर्मनी अपनी बढ़ती हुई जनसत्ता के लिए एक स्थान चाहता था 1871-1880 तक छ: लाख से ज्यादा जर्मन अपनी पैतृक भूमि को छोड़कर अन्य देशों के नागरिक बन गये थे।

इस प्रतिद्वन्द्विता के कारण उनके राजनैतिक संबंध कभी नहीं टूटे जैसाकि बताया गया हे। 1912 से 1914 के मध्य ब्रिटेन और जर्मनी ने कई क्षेत्रों में एक दूसरे को सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त दोनों द्वारा काफी मात्रा में वस्तुओं का आयात निर्यात किया जाता था। ब्रिटेन व जर्मनी कई स्थानों पर प्रतिस्पर्धी थे। किन्तु फिर भी ब्रिटेन उक्त व्यापार की नीति

बनाए रखने में सफल रहा। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापारिक प्रतिस्पर्धा युद्ध के लिए अनुकूल परिस्थितियां स्थापित करने में सफल हुई। जहां तक औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्वता का सवाल है ये ठीक है कि इन प्रश्नों को लेकर यूरोप में न केवल तनाव बढ़ा बल्कि संकटपूर्ण स्थिति भी प्रकट हुई। परन्तु फिर भी ये मानना पड़ेगा कि अफ्रीका के बंटवारे या अन्य भाग में दबाव के कारण युरोपीय देशों में युद्ध नहीं हुआ। वैसे भी ब्रिटेन तथा फ्रांस और ब्रिटेन तथा रूस कई दशकों से संसार के विभिन्न भागों में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। तब भी उन्होने न केवल औपनिवेशिक झगड़े सुलझाए बल्कि समझौतों की शर्तो के अलावा भी एक दूसरे को सहयोग दिया। इससे ऐसा नहीं लगता कि इस कारण महायुद्ध हो सकता था।

जर्मन लोगों को जर्मन रखा जा सकता था इस प्रकार जर्मन अपनी प्रतिष्ठता और अपनी महत्वकांक्षा के कारण यूरोप के अन्य देशों से पीछे नहीं रहना चाहता था। इस दौड़ में उसके प्रतिद्वन्द्वी थे इंगलैंड, फ्रांस और रूस। उन्होनें पहले से ही एशिया और अफ्रीका के धनाढ़य क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया था और अब जर्मनी के लिए कुछ बचा नहीं था। इस तरह 1900 से लेकर 1901 तक जर्मनी की संतुष्ट न होने वाली साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा प्रथम विश्वयुद्ध का मूल कारण बनती हुई दिखाई दी।

20.36 जर्मन की नौसेना और इंग्लैण्ड के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता:

जर्मनी इस बात को समझता था कि एक विश्व शक्ति बनने के लिए जल सैना का होना बहुत आवश्यक है इसके लिए उसने तेजी से अपनी जल सेना का निमार्ण करना प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड को ज्यादा चिन्ता होने लगी। और इंग्लैण्ड यह समझने लगा कि वह संसार की सबसे बडी नौसैनिक शक्ति नहीं रह सकता इस खतरे को दूर करने के लिए इंग्लैण्ड ने फ्रांस तथा रूस के साथ त्रिराष्ट्र सौहार्द की जर्मनी ने इस रक्षात्मक संधि को इंग्लैण्ड की एक ऐसी नीति समझा जिससे की वह जर्मनी को घेरना चाहता है। इससे इंग्लैण्ड और जर्मनी के संबंध खराब हुए। इस तरह सबसे बडी स्थल शक्ति और सबसे बडी जल शक्ति के बीच द्वन्द्व शुरू हुआ यह प्रथम विश्व युद्ध का कारण बना।

20.37 जर्मनी की निकटपूर्व की नीति :

जब जर्मनी की हर क्षेत्र के विस्तारवादी नीति पर रोक लगा दी गई तो उसने अपनी महत्वाकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने के तुर्की में रूचि लेना शुरू किया। और आस्ट्रिया की बाल्कन नीति का समर्थन किया और जब आस्ट्रो-सर्बियन प्रतिद्वन्द्विता में बाल्कन प्रांत में कई संकट उत्पन्न किये तो आस्ट्रिया ने जर्मनी को (Shining Armor) शानदार कवच में पाया। जर्मनी ने यह सोचा कि आस्ट्रिया के बाल्कन प्रति में विस्तार से जर्मनी का प्रभाव भी बाल्कन प्रान्त में बढ़ जाएगा। और उसकी बर्लिन-बगदाद रेल लाइन योजना को बल मिलेगा। इस रेलवे लाइन की योजना से इंग्लैण्ड को भय हो गया। यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने इसका विरोध किया क्योंकि इससे जर्मनी का साम्राज्य पूर्व में बढ़ सकता था। इससे यूरोप में युद्ध की आग सुलगने लगी।

यूरोप 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब दो गुटों में विभाजित हो गया जिसमें एक का नेतृत्व जर्मनी कर रहा था और दूसरे का इंग्लैण्ड। इन दोनों दलों ने एक-एक बार कूटनीतिक स्तर पर अपनी पराजय की कड़वाहट चख ली थी। मोरक्को संकट के समय जर्मनी को अपनी

हार स्वीकार करनी पड़ी थी और 1908 में इंग्लैण्ड के गुट को उस समय हार स्वीकार करनी पडी जब अस्ट्रिया ने 1878 के बर्लिन सम्मेलन के निर्णय के विरुद्ध बोस्निया और हर्जी गोविना को अपने राज्य में विलीन कर लिया इसलिए अब यह अनुमान लगाया जा रहा था कि विश्व में अगर कोई संकट उत्पन्न होता हे तो यह गुट अपनी हार स्वीकार नहीं करेंगे। बाद में जब बोस्निया का संकट आया तो दोनों ही दल अपनी-2 बात पर डटे रहे। इस कारण प्रथम विश्व युद्ध का होना अवश्यंभावी हो गया।

उपरोक्त कारणों से अन्तराष्ट्रीय तनावपूर्ण स्थिति तो अवश्य उत्पन्न हुई परन्तु इस स्थिति को देखकर ये नहीं कहा जा सकता कि युद्ध होना अवश्यंभावी हो गया वास्तव में राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना आर्थिक, सैनिक स्थिति को मजबूत करना, औपनिवेश स्थापित करना आदि सभी बातें राष्ट्रीय की भावना के आय तथा मजबूत होने की तथा अन्तराष्ट्रीय संबंधों की देन है और इनके कारण जो तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई थी वह प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से एक दशक पूर्व के समय में भी देखी जा सकती है प्रश्न ये उठता है कि 25 जून आस्ट्रिया हंगरी के युवराज की हत्या होने से जो परिस्थितियां उत्पन्न हुई उनमें क्या ऐसी विशेषताऐं थी जिनके कारण महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। ये केवल तात्कालिन कारण न होकर एक ऐसी घटना थी जिसके चारों और विभिन्न देशों वे हितों में टकराव पैदा हुआ जिसमें ऐसा लगा कि फैसला युद्ध से ही किया जा सकता है। यदि सर्बिया पर दबाव डालकर शांति बनाए रखने का प्रयत्न किया जाता तो रूस की मानहानि होती और यदि आस्ट्रिया पर दबाव डालकर समझौता किया जाता तो आस्ट्रिया के अस्तित्व के लिए खतरा बढ जाता।

20.4 तात्कालिक कारण साराजीवो का हत्याकाण्ड :

1914 में प्रिन्सिंप जो सरबिया का नागरिक था, उसने आस्ट्रिया के राजकुमार फर्डिनेंड Ferdinand की हत्या कर दी। हत्या का स्थान बोसनिया की राजधानी साराजीवो था। आस्ट्रिया ने 1908 में सरबिया को अपने राज्य में विलय कर लिया था। यह हत्या निश्चित रूप से युद्ध का तात्कालिक कारण बनी। अब प्रश्न यह उठता है कि यह राजनैतिक हत्या क्यों की गई। 20वीं सदी के प्रारंम्भ से ही आस्ट्रिया व सरबिया में प्रतिद्वन्द्विता थी। सरबिया, यूरोप का विस्फोटक केन्द्र था इसका कारण यह था कि सरबिया चारों ओर से भूमि से घिरा हुआ था उसके पास कोई बन्दरगाह नहीं था। सरबिया की राष्ट्रीय महत्वकांक्षा थी कि अपने उत्पादन के लिए सस्ता कच्चा माल के प्राप्ति हेतु उसको कोई जलमार्ग चाहिए। आस्ट्रिया इसका विरोध करता था। आस्ट्रिया के विरोध का क्या कारण था जिसको सुअर राजनीति Swain Politik कहते है। यह नीति कया थी? सरबिया सुअर का मांस निर्यात करता था, किन्तु इसके पास कोई जलमार्ग नहीं था, इसलिए वह विदेशों को मांस कैसे निर्यात करता? इंग्लैण्ड को इस मांस की बहुत जरूरत रहती थी। वह को अच्छा माल चुकाने को तैयार था किन्तु, इंग्लैण्ड को मास निर्यात कर दे तो अस्ट्रिया को मांस सस्ता नहीं मिल सकता था क्योंकि सरबिया के पास कोई जलमार्ग नहीं था इसलिए आस्ट्रिया स्वंय के द्वारा निर्धारित की गई मूल्य पर खरीदना चाहता था। इस तरह के विवाद को इतिहास में सुअर राजनीति के नाम से जाना जाता था आस्ट्रिया ने सरबिया के विकास के मार्ग बंद कर दिये थे। सरबीया के लोग बहुत परेशान थे। सरबिया के

कृषकों को विश्वास था कि आस्ट्रिया हंगरी उनकी सुख समृद्धि के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए वह आस्ट्रिया-हंगरी के शासक से बहुत घृणा करते थे।

इस विवाद में एक राजनैतिक तत्व भी था, अधिकांश सरबिया के निवासी जाति से स्लाव थे। सर्बिया का हित ये मांग करता था कि सर्बिया एक शक्तिशाली स्लाव राज्य बने इसके लिए उसे बाल्कन प्रायद्वीप के कुछ स्लाव क्षेत्रों पर अधिकार कर लेना चाहिए। आस्ट्रिया इसका विरोध करता था, आस्ट्रियन साम्राज्य के बहुत से लोग भी स्लाव जाति के थे। अगर सर्बिया को एक शक्तिशाली राज्य बनने दिया तब आस्ट्रियन सम्राज्य में रहने वाले स्लाव इस नव स्थापित स्लाव राज्य से मिलने के लिए उतारू होगें। इससे आस्ट्रिया का राज्य छिन्न भिन्न हो जाएगा।

1866 की लड़ाई में मध्य यूरोप से आस्ट्रिया को अलग कर दिया गया था इसकी क्षतिपूर्ति वह किसी और सत्र में करना चाहता था इसके लिए उन्होंने बाल्कन प्रायद्वीप को चुना था इसलिए आस्ट्रिया ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए जो नीति बनाई उसको पूर्व की ओर बढ़ो (Drive towards the East) कहते हैं। इस नीति का परिणाम यह निकला कि 19 वीं शताब्दी के अन्त तक बाल्कन प्रायद्वीप के निम्नलिखित क्षेत्रों पर आस्ट्रिया और सर्बिया दोनों अपनी नजरें रखते थे बोस्निया और हर्जिगोविना दूसरा सनजॉक ऑफ नौवी बाजार तीसरा मोंटीनीग्रो जातीय आधार पर यह तीनों क्षेत्र सर्बिया के नियंत्रण में होने चाहिए अगर सर्बिया इन क्षेत्रो को प्राप्त करने में सफल हो जाता तो सर्बिया एक शक्तिशाली राज्य ही नहीं होता बल्कि उसको कुछ अच्छे बंदरगाह भी मिल जाते, जिससे कि उसकी सुअर राजनीति की समस्या का समाधान हो जाता इसके विपरीत आस्ट्रिया के हित ये माँग करते थे कि सर्बिया को शक्तिशाली राज्य नहीं बनने दिया जाए। यही प्रथम विश्वयुद्ध का मूल कारण था।

सर्बिया कया करे ? 1908 तक सर्बिया को यह आशा थी कि वह बोस्नियां और हर्जेगोविना पर अधिकार कर लेगा। किन्तु 1908 में आस्ट्रियन साम्राज्य ने बोस्निया और हजैगोविना को अपने राज्य में विलय कर लिया। सर्बिया के लिए यह विलय जोरदार झटका थी क्योंकि अब तक सर्बिया यह आशा लगाये हुए था कि शीघ्र या देर से बोस्निया पर अधिकार करके एड्रियाटिक तक पहुंच जाएगा। उसका यह दावा राष्ट्रीयता पर आधारित था किन्तु जब 1908 में आस्ट्रिया ने बर्लिन सम्मलेन 1878 का उल्लंघन करके इसको अपने राज्य में मिला लिया तो सर्बिया की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। इसलिए सर्बिया का शासन युद्ध चाहता था। इसलिए वह इसके लिए तैयारियाँ करने लगा। गुप्त सर्बियन संघों की स्थापना की गई, जो आस्ट्रिया के अधिकारियों की हत्या करके बोस्निया और हर्जेगोविना में आंतक उत्पन्न करके आस्ट्रिया को वहां से खदेड़ना चाहता था। इस प्रकार की संस्था, को "काला हाथ" कहते थे। किन्तु प्रिन्सेप इस संस्था का सदस्य नहीं था वह एक गुप्त समिति "युवाबोस्निया" का सदस्य था। काला हाथ समिति को सरकार ने कभी मान्यता नहीं दी थी परन्तु सर्बिया के बड़े-2 पदाधिकारी व्यक्तिगत रूप से इसके सदस्य थे। इस समिति ने युवराज की हत्या की योजना बनाई थी। सर्बिया की सरकार को जब इस योजना के बारे में पता लगा तब उन्होंने इसे आग देने की सलाह दी। परन्तु प्रिन्तेप और उसके साथियों ने ऐसा करने को मना कर दिया था, इस पर सर्बिया कि सरकार ने इस योजना का समर्थन नहीं किया तथा आस्ट्रिया को इस बात को

संकेत दिया कि शायद युवराज की हत्या का प्रयत्न किया जाए। इसलिए आस्ट्रिया के शासन ने इस धृणित हत्या के लिए सर्बिया के शासन को ही उत्तरदायी ठहराया और उसने इसका पूरा ना होने देने के लिए कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाये। युगोस्लाव इतिहासकार वलाटीमीर ने प्रिंसेप।

हत्यारों का, उनके समय की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का, उनके राजनैतिक तथा व्यक्तिगत उद्देश्यों का विस्तार से अध्ययन किया। इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि युवराज की हत्या बोस्निया तथा सर्बिया की क्रांतिकारी समितियों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम थी। इसलिए इस घटना से सर्बिया को आस्ट्रियन लोगों ने हत्यारों का राष्ट्र कहा इस धटना के बाद आस्ट्रिया ने सर्बिया को एक अन्तिम चुनौती दी जिसकी शर्तें बहुत ही आपत्तिजनक थी और यह कहा कि 48 घण्टे में इसको पूर्णतय स्वीकार कर लिया जाए। ये शर्तें स्पष्टतया यह सोच कर तैयार की गई थी कि सर्बिया इन्हें कभी नहीं मानेगा। जर्मनी तथा इटली में इन शर्तो के विषय में विचार विमर्श नहीं किया गया। इंग्लैण्ड, फ़्रांस तथा रूस ने आस्ट्रिया को समझाया कि वह समय सीमा में वृद्धि करे किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। इस अन्तिम चुनौती की एक शर्त यह थी कि सर्बिया की पुलिस पर आस्ट्रिया का नियंत्रण होगा जिसका अर्थ यह था कि आस्ट्रिया को सर्बिया की गहनीति में स्वतंत्रता मिल जाए सर्बिया ने आस्ट्रिया की सभी शर्तें मान ली सिवाय इस शर्तें के कि अगर सर्बिया आस्ट्रिया की इस शर्तें को स्वीकार करता है तो आस्ट्रिया की सार्वभौम सत्ता का उल्लंधन होता है। दुनिया के अन्य देश इन बातों को निकट से देखते रहे। सर्बिया का शासन इसकी क्षतिपूर्ति करना चाहता था एवं लिखित क्षमापत्र भी देना चाहता था। किन्तु आस्ट्रिया इसके लिए तैयार नहीं हुआ। सर्बिया इस पूरे विवाद को हेग न्यायालय में भी सुपुर्द करना चाहता था अथवा इसको बडी शाक्ति के सम्मेलन में प्रस्तुत करने का इच्छुक था किन्तु आस्ट्रिया ने सारे सुझाव अस्वीकार कर दिये। इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध का होना अनिवार्य हो गया। 25 जुलाई को 48 घण्टे की अवधि समाप्त होने से पहले ही आस्ट्रिया के अल्टीमेटम का उत्तर भेज दिया गया। किन्तु सर्बिया के उत्तर को असंतोषजनक मान कर अस्वीकार किया गया और सर्बिया के साथ राजनीतिक संबंध तोड़ लिये गये। 25 जुलाई से ही रूस ने अपनी सेना को सर्तक कर दिया। जब आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करने रूस पहुँची तो रूस का विदेश मंत्री साजानोव उससे बहुत चिन्तित हुये उसने 21 जुलाई को जार से पूछ कर आंशिक सैन्य सज्जा की आज्ञा जारी कर दी। अत: 29 जुलाई को जब यह सूचना मिली कि आस्ट्रिया ने बेलग्रेड पर बमबारी की है तो रूस ने 30 जुलाई को पूर्ण सैन्य सज्जा की आज्ञा देने की तैयारी की। रूस की सेना कि इस छावनी से निकलने लामबंदी के कारण जर्मनी का युद्ध में प्रवेश करना आवश्यक हो गया।

जर्मनी द्वारा रुस को अल्टीमेटम देना :

31 जुलाई को रूस को 12 घण्टे की अन्तिम चेतावनी दी जिसमें उससे जर्मनी व आस्ट्रिया के विरूद्ध समस्त सैनिक तैयारियां समाप्त करने को कहा गया। रूस ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया इसलिये 1 अगस्त को जर्मनी ने युद्ध की घोषणा की।

रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करने से पहले ही जर्मनी ने फ़्रांस की सरकार से पूछा था कि रूस व जर्मनी के बीच युद्ध होने से उसकी क्या नीति रहेगी। इसके उत्तर में फ़्रांस के

मंत्री ने कहा कि हमें अपने हितों के अनुसार निर्णय करना पड़ेगा। किन्तु उसी के बाद फ़्रांस ने अपनी सेनाओं को कूच करने कि आज्ञा दे दी 3 अगस्त को जर्मनी ने फ़्रांस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी उसी दिन इटली ने युद्ध में तटस्थ रहने की घोषणा की।

ब्रिटेन का युद्ध में प्रवेश :

इंग्लैण्ड का विदेशमंत्री एडवर्ड ग्रे अन्त तक युद्ध को रोकने का प्रयत्न करता रहा किन्तु उसे निराश होना पड़ा युद्ध की घोषणा करने के लिये पार्लियामेंट थी स्वीकृति लेना भी आवश्यक था। फ़्रांस ने इंग्लैण्ड की सहायता प्राप्त करने का आश्वासन दिया और 31 जुलाई को फ़्रांस ने राष्ट्रपति ने अपना एक विशेष दूत सम्राट जार्ज पंचम के पास भेजा किन्तु विदेश मंत्री उस समय तक कोई निश्चित आश्वासन देने की स्थिति में न था।

31 जुलाई को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने फ़्रांस व जर्मनी की सरकार के पास एक पत्र भेजा। जिसमें दोनों राज्यों से पूछा गया कि क्या वह बेल्जियम की तटस्थता को बनाये रखने का वचन देने को तैयार है। फ़्रांस ने तुरंत ही आश्वासन दे दिया। किन्तु जर्मनी इस प्रकार का आश्वासन देने को तैयार नहीं था वह इसके बदले में ब्रिटेन की तटस्थता का आश्वासन चाहता था जो इंग्लैण्ड का विदेश मंत्री देने को तैयार नहीं था। इसी बीच फ़्रांस व जर्मनी के बीच युद्ध होना निश्चित हो चुका था। इसलिये दो अगस्त को विदेश मंत्रीमण्डल ने उत्तरी सागर में जर्मनी की सेना के आक्रमण के विरूद्ध फ़्रांस की नौसेना की सहायता करने का आश्वासन दिया। इधर जर्मनी ने बेल्जियम को अल्टीमेटम दिया कि वह जर्मन सेना को फ़्रांस के विरूद्ध आक्रमण करने को मार्ग दे। बेल्जियम ने इस अल्टीमेटम को अस्वीकार किया। साथ ही ब्रिटेन से अपनी राज्य की तटस्थता का आश्वासन मांगा। 4 अगस्त को यह सूचना मिली कि जर्मन सेनाओं ने बेल्जियम की सीमा में प्रवेश ले लिया है। इस पर जर्मनी से कहा गया कि वह अपनी सेना वापस बुलाने किन्तु जर्मनी से कोई उत्तर ने मिलने पर ब्रिटेन ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की1 इस प्रकार 4 अगस्त 1914 को युरोप की सभी बड़ी शक्तियों का युद्ध प्रारम्भ हो गया। 29 अक्तूबर को तुर्की ने बिना युद्ध की घोषणा किये रूस के काले सागर पर बमबारी की। 3 नवम्बर को रूस ने तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उसके दो दिन बाद ब्रिटेन व फ़्रांस ने भी वैसा ही किया।

इटली का मित्र राज्यों की ओर से युद्ध में प्रवेश :

3 अगस्त 1914 को इटली ने इस आधार पर कि उसके मित्रों ने स्वंय ही युद्ध आरम्भ किया है कि तटस्थ रहने की घोषणा की। आस्ट्रिया व जर्मनी को पहले ही इटली को सहायता मिलने की आशा नहीं थी। अत: उनको उनसे कोई निराशा नहीं हुई। 26 अप्रेल 1915 को इटली ब्रिटेन फ़्रांस व रूस के बीच एक गुप्त समझौता हुआ जिसके अनुसार इटली ने मित्र राज्यों की ओर से युद्ध में शामिल होने का वचन दिया और 23 मई 1915 को इटली ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की।

संयुक्त राज्य अमेरिका का मित्र राज्यों की ओर से प्रवेश :

4 अगस्त 1914 को अमेरिका राष्ट्रपति विल्सन ने तटस्थता की घोषणा की किन्तु अमेरिका के नागरिकों की सहानुभूति मित्र राज्यों की ओर थी। मार्च 1917 में जर्मनी ने

अमेरिका के पाँच व्यापारी जहाजों को डुबा दिया इस पर राष्ट्रपति विल्सन ने 6 अप्रेल 1917 को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की। इस प्रकार संसार में अनेक देश इस युद्ध में शमिल हो गये। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रश्न यह उठता है कि जुलाई 1914 की स्थिति में क्या ऐसी विशेषताएं थी जिनके कारण युद्ध हुआ। एक बात तो यह स्पष्ट है कि लामबंदी का आदेश युद्ध की अर्द्ध घोषणा के बराबर होता है। अगर सर्बिया, रूस ओर जर्मनी जल्दबाजी में लामबंदी का आदेश न देते तो उम्मीद की जा सकती कि युद्ध टाला जा सकता। दूसरी बात यह कि क्या इससे पहले शाही परिवार के सदस्यों की हत्याएं नही की गई थी 1898 में आस्ट्रिया की महारानी, 1900 में इटली के सम्राट, 1908 में पुर्तगाल के राजा की हत्याऐं की गई। फिर जुलाई 1914 में ही युद्ध क्यों हुआ। जैसा पहले बताया जा चुका है कि त्रिराष्ट्रीय मैत्री या त्रिराष्ट्रीय सौहार्द में एक-एक बार राजनैतिक अपमान का बोझ उठा लिया था परन्तु अब इन दोनों दलों में से कोई इस नये संकट पर अपमान झेलने को तैयार नहीं थी। सभी देश अपनी महत्ता को बनाए रखना चाहते थे। जब उन्हें दो विकल्पों, अपनी प्रतिष्ठा खोकर शान्ति बनाए रखने तथा अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने में से एक को चुनना पड़ा। तब उन्होंने दूसरा मार्ग अपना लिया।

इस युद्ध का सभी यूरोपीयन देशों में बहुत उत्साह से स्वागत किया गया परन्तु जो युद्ध लड़ा गया वह उस युद्ध से कहीं लम्बा तथा भयानक सिद्ध हुआ जिसका यूरोप के सभी देशों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया था।

20.5 बोध-प्रश्न

प्रश्न 1: 1914 के महायुद्ध से पूर्व यूरोपियन महान शक्तियों के राजनैतिक सम्बंधों का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 2: 1914 से 1918 के प्रथम महायुद्ध के कारणों का उल्लेख कीजिए इस युद्ध के लिये जर्मनी कहां तक उत्तरदायी था?

प्रश्न 3: प्रथम महायुद्ध उन दो यूरोपिय गुटों की शक्ति का प्रर्दशन मात्र था जो अपनी शक्ति परीक्षण के लिये बैचेन थे। इस कथन के सत्य पर प्रकाश डालिये?

प्रश्न 4: क्या प्रथम विश्व युद्ध अवश्यम्भावी था, विवेचना कीजिए?

20.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1- David Thomson : Europe since Napolean.

2- Fay : Origins of the World War.

3- Ketelbey : History of Modern Times.

4- Schapiro : Modern and Contemporary European History.

इकाई-21

रूस की क्रांति की बौद्धिक नींव (1815-1916)

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 वाह्य प्रभाव

21.3 बाल्शविक यूटोपिया

21.4 ऐतिहासिक रूप रेखा

21.5 1848 एवं रूस

21.6 रूसी नारोदनिक

21.7 बुद्धिवाद की उत्पत्ति तथा स्वरूप

21.8 बुद्धिजीवी-संविदा तथा सिद्धान्त

21.9 बोध प्रश्न

21.10 संदर्भ ग्रंथ

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको रूस की क्रांति में बुद्धिजीवियों तथा बुद्धिवाद की भूमिका से अवगत कराना है। इस संदर्भ में बौद्धिक आन्दोलन की ऐतिहासिक रूपरेखा, पृष्ठभूमि, स्रोत, व बुद्धिजीवियों के उदय तथा विभिन्न प्रबुद्ध रूसी व्यक्तियों तथा आन्दोलनों की विस्तृत विवेचना के साथ साथ इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित पहलुओं की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होगी।

रूस की क्रांति में चिन्तकों तथा बुद्धिजीवियों की भूमिका का महत्व बौद्धिक आन्दोलन पर बाह्य प्रभाव

बाल्शविक युटोपिया

बुद्धिवाद की ऐतिहासिक रूप रेखा तथा स्रोत

वर्ष 1848 एवं रूस

रूसी नारोदनिक

बुद्धिवाद तथा बुद्धिजीवियों की उत्पत्ति, संविदा तथा सिद्धान्त

21.1 प्रस्तावना

उद्भावनाएं आन्दोलनों को जन्म देती हैं। रूसी बुद्धिजीवी नि: संदेह एक "तत्व" एक शक्ति थे जिन में संसकथ्त सम्बद्धता धार्मिक उत्साह के समान उत्तेजित तथा परिपूर्ण थी। यही लग्न तथा शुधार की भावना विज्ञान तथा तर्क संगीत में विश्वास और विचारों के अन्तराल में विचरण बुद्धिजीवियों के वह प्रभावोत्पादक अस्त्र शस्त्र थे जिनके द्वारा उन्होंने रूस को अन्धकारमय वातावरण से जूझने की शक्ति दी। लेनिन ने जो इस क्रांति का देवता था स्वंय यह विचार व्यक्त किया है कि

"समाजवाद की उत्पत्ति सघन वर्ग के शिक्षित प्रतिनिधियों के दार्शनिक ऐतिहासिक तथा आर्थिक सिद्धान्तों व परिकल्पनाओं द्वारा ही हुई। अतएवं समाजवाद के तत्वज्ञान की मशाल श्रमजीवीयों के हाथ में नहीं बल्कि बूर्जवा बुद्धि-जीवियों के हाथ मे है। समकालीन समाजवाद का जन्म इसी वर्ग के विभिन्न लोगों के मस्तिष्क में हुआ था"। यह भी याद रखना पड़ेगा कि किसी समाज ने अपने साहित्कारों से इतना कुछ नहीं मांगा, जितना रूस ने और कहीं भी समाजवादी बुद्धिजीवियों के हाथों में राजनैतिक गतिविधियां इस प्रकार नहीं सिमटी जैसे 1917 के रूस में। इन सोशलिस्ट बुद्धिजीवियों ने जो " रेजर्व एवं शैडो गवर्नमेंट बनाई उसके एक्जेक्यूटिव के 42 सदस्यों में केवल 7 श्रमजीवी थे। ऐसे पत्रकार सखानोव, स्तेक्लोव के अतिरिक्त कमिटी में दूमा डिप्टी (च्रवेज, स्कबेलव, तेसेरे तेल्ली) थे और बुद्धिजीवियों की इस प्रधानता से पेट्रोगाद सोवियत 1905 की सोवियत से भिन्न थी। सामन्तवादी रूस में सामाजिक तथा नैतिक मसले राजनैतिक मसलों से अधिक थे। यह रूस की ऐतिहासिक स्थिति थी कि उसने दोनों ओर आगे तथा पीछे देखा। यही एक क्रांति थी जो पूर्वायोजित तथा सुविचारित थी। मार्क्सवाद को रूसी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का ही नाम लेनिनवाद है। अपने 15 जुलाई 1847 के खुले पत्र में बेलिन्स्की ने गोगोल को जो लिखा वह उस समय का वातावरण दर्शाता है।

तुम नहीं समझते पर मैं रूसी पब्लिक कों पूर्ण रूप से जानता हूँ। इसका चरित्र रूसी समाज ने ढाला हैं जिस समाज की कैद में आज भी ऐसी क्रांतिकारी शक्तियाँ निकलने को बैचेन तड़प रही हैं और कुचली जा रही हैं। यह केवल साहित्य में ही, पूर्ण सेन्सर के बावजूद बिलक उठती है, आगे बढ़ती है। इसी कारणवश हमारे साहित्यकार अपनी सीमित योग्यता तथा सार्मथ्य के बावजूद आदर तथा सम्मान का पात्र है, उसे विश्वव्यापक ख्याति तथा सत्कार मिलता है। लोक जन रूसी साहित्यकारों में ही अपना अकेला आगामी लीडर क्रांतिकारी, उद्धारक तथा मुक्तिदाता देखते व पाते है, जो उन्हें कटटरपन, अन्धकारमय निरंकुशता तथा राष्ट्र की द:खद समकालीन जीवन प्रवाह से छुट्टी दे सकता है। इस बात का समर्थन हर्जेन ने पेरिस में एनेनकॉव के सामने किया तथा यही प्रसिद्ध पत्र रूसी क्रांतिकारियों के लिए बाइबिल के समान महत्वपूर्ण हो गया।

21.2 बाह्य प्रभाव

कुछ अग्रेंज तथा अमरीकी इतिहासकारों ने रूसी बुद्धिजीवीयों का तिरस्कार इस तथ्य पर किया कि उन्होंने अपनी धारणायें पाश्चात्य विचारों से लेकर बिना सही ढंग से समझे हुए ग्रहण करने की चेष्टा की परन्तु यह विवादास्पद है। यह तो सत्य है कि क्रांतिकारी विचारों में नानाप्रकार के रंग तथा विभिन्न देशों के बुद्धिजीवियों के विचारों का समन्वय मिलता है। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से रूसी साहित्य तथा विचारों पर जर्मन रोमान्टीसिज़्म का प्रभाव लगभग सभी इतिहासकारों ने बताया था। नवीनतम शोध के पश्चात इस कथन की सत्यता से पूर्ण सहमति असम्भव लगती है। कारण यह कि यदि हम पुष्किन को पहले का भी मान लें तो भी लरमानतोव, गोगल, नेकरासव इत्यादि समकालीन पर भी प्रभाव इतना गहरा नहीं मिलता। फिर भी यह तो मानना पड़ेगा कि जर्मन तात्विक अवयवों (मेटाफिजिक्स) ने रूस में दायें-बायें दोनो

बाजुओं के तथा धार्मिक राजनैतिक राष्ट्रीयता के पुजारियों के विचारों को बहुत प्रभावित किया। यहाँ दर्शनाशास्त्र की पाठशालाओं विशेषतय: हीगेल तथा शेलिंग के सिद्धान्तों ने बहुत असर छोड़ा। यधपि शेलिंग के शोध-प्रबन्धों तथा पुस्तकों को समझना अत्यन्त दुर्लभ था परन्तु उसनीने तथा उसके समान, अन्य चिन्तकों ने ही मानवीय विचारों को 18 वीं शताब्दी के यन्त्रवादी वैचारिक रूप को सौन्दर्यवादी तथा जैविक धारणाओं की ओर मोड़ा। 1840 के "चालीसा' ' लोग (बकूनीन हर्जेन, ओगारेव, तुर्गेनिव, बेलिंस्की इत्यादि) सभी को हम "रोमान्टिक्स" की आखरी पीढी के मेम्बर कह सकते है। राजनैतिक रूप से उनका पोषण पाश्चात्य उदारवादिता में हुआ तथा दार्शनिक रूप से जर्मन आर्दशवादियों विशेषतय: फिशते, शलिंग तथा हीगेल ने पाश्चात्य स्वतंत्रता समानता तथा भाईचारे का स्वरूप दिखाकर जार के क्रूर, पिछडे रूढिवादी रूस को बदला।

21.3 बाल्शविक यूरोपिया

ऐसे समय में राजनैतिक गतिविधियाँ क्षणयंत्र समझी जाए तथा सुधार के लिए आन्दोलन भयभीत कर दे कोई समाजवाद फ्ले फूले तो शुरू में वर्जित होने से काल्पनिक ही रहेगा। वैसे भी यही कहा जाता है कि चाहे कोई क्रांति हो या धार्मिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक आन्दोलन हो उसका वास्तविक रूप किसी स्वप्न किसी कल्पना के दिव्यदर्शन से ही उभरता है। इसी प्रकार 19 वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध, विशेषतय: 1830 के (यूटोपिया) का स्वर्णयुग पश्चात स्वप्नदर्शी आदर्शवाद शुरू हुआ था। इसके 2 मुख्य स्रोतों का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। एक रूसी, जैकोबिन्ज, ओवेन, फोरियर इत्यदि का रंग जिन्होंने इसको नैतिक तथा सदाचार की रोशनी में देखा अच्छाई की जीत तथा मानव के स्वभाव का पुर्ननिर्माण तथा विवेक का पुर्नजागरण होता है। दूसरा स्रोत तुरगोत, कोनडोरसेट सेन्ट साइमन की विचारधारा पर आधारित था। यह वह थे जिन्होंने यूटोपिया को आर्थिक तक तकनीकी रूप से आका तथा वैज्ञानिक विस्तार तथा पैदावार से जांचा। मार्क्स ने इन दोनों को जोड़कर ही सभ्यता की उन्नति का प्रारम्भ माना। मार्क्स के भीतर एक पैगम्बरी नीतिज्ञ, एक बहुत प्रौढ़ वैज्ञानिक निहित था। मार्क्स ने यूटोपिया वाले समाजवाद तथा कम्यूनिज्म पर जो कुछ कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टों में लिखा है और जिसका प्रतिबिम्ब उसने प्रोग्रामों में भी झलकता है। अर्थात् "गांव तथा नगर के फर्क को मिटाना प्राइवेट इन्डस्ट्रीज, मजदूरी प्रथा को मिटाना इत्यादि वह यह साबित करता है कि मार्क्स ने यूरोपियन समाजवाद के केवल एक ही पहलू को बुरा कहा है और यह था यूटोपिया का इतिहास से रिक्त स्वरूप। 1848 की क्रांति की असफलता से जो मोहनिवारण हुआ उस से चहुं ओर यूटोपिया के विपरीत वातावरण छाने लगा। अब क्रियात्मक तथा व्यावहरिक राजनीति का युग आंरभ हो चुका था।

मार्क्स ने तो नहीं परन्तु एग्निल्ज़ ने यूटोपियन तत्वों को अपने उदगम सिद्धान्तों में जीवित रखा यूटोपिया तथा विज्ञान का मिश्रण हमें मार्क्सवाद में ही नहीं बल्कि उदारवाद में भी मिलता है। रूसी अराजकतावादी तथा पापुलिस्ट (नारोदनिक) यूटोपियन विचारों में गले तक डूबे थे। यही वह वातावरण थाजब मार्क्स ने रूसी क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को प्रभावित किया तथा इसी वातावरण में लेनिन भी पला बढ़ा। लेनिन को क्रान्ति में विजय तथा तत्पश्चात सफलताओं के

कारण एक सख्त राजनीतिज्ञ तथा निष्ठुर व्यवस्थापक के रूप में पेश किया गया है परन्तु उस ने भी व्यानिशेव्सकी के उपन्यास के नाम पर अपने एक निबन्ध "What is to be done" (क्या करना चाहिये या क्या करना है) में यूटोपिया तथा स्वपनो के महत्व पर प्रकाश डाला है कि यही स्वप्न मानवजाति के लिए प्रबल प्रेरणा तथा उर्जस्विता तथा अनुलंब बनते हैं जो हानिकारक नहीं शक्तिप्रद है। इसी प्रकार के 2 स्वप्न उसकी क्रान्ति के संदर्भ में भी मिलते हैं।

21.4 ऐतिहासिक रूप रेखा

18 वीं शताब्दी के अन्त से 19 वीं शताब्दी के प्रांरभ तक रूस निरंकुश शासन की क्रूरता की मरूभूमि में कहीं कहीं उदारवाद की छाया भी देखता आया था। दमनकारी नीतियों के बीच पीटर महान (1682-1725) के सुधारों की बयार चली। तत्पश्चात रूस की प्रबुद्ध निरंकुशवादी शासिका कैथंराइन महान (1762- 1796) का युग आया।

समस्त रूसी इतिहासकार इस तथ्य पर सहमत है कि शिक्षित वर्ग तथा पिछड़े वर्ग "काले लोगों" के मध्य की खाई बढ़ाने में पीटर महान ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पीटरमहान ने पश्चात्य शिक्षा की महिमा समझते हुए कुछ युवकों को पढने के लिए वाह्य देशों को भेजा जिससे पाश्चात्य सभ्यता के कुछ नमूने तैयार हो गये यह रूसी-यूरोपी गुट तंत्र का प्रारंभ था। यह गुट अपनी मध्यकालीन मूल्यों से तथा जनसाधारण से स्वयं को उच्च समझने के कारण अपने में एक अनोखी श्रेणी बन गया तथा उसका परिणाम रूस में श्रेण्यवाद का अग्रदूत समझा गया। कैथराइन महान अपनी उदारवादी नीतियों सहित (जिसकी प्रशंसा वाल्तेयर तथा ब्रिम ने की है) उभरी थी परन्तु फ्रान्सीसी क्रान्ति तथा रूस के बार-बार आन्दोलनों से भयभीत हो गई। बुद्धिजीवी अब रूस की परिस्थितियों का अन्य पाश्चात्य देशों की दशा से मुकाबला करने लगे थे। कैथराइन को विवश होकर पुरानी दमनात्मक नीति फिर से अपनानी पड़ी जो एलेकजेन्डर प्रथम के दौर में पुराने सामन्तवादी वातावरण में ढल गया। क्रूर तथा शोषित वर्ग के मध्य स्थित था फ्रांसीसी भाषीय सम्यवर्ग जो यूरोपी तथा रूसी जीवन स्तरों से अनभिज्ञ न था जो जानता था न्याय अन्याय सभ्यता, असभ्यता का अन्तर और यह भी कि इस अन्तर को कैसे दूर किया जाए।

1830 से 1848 के मध्य रूस युवापीढ़ी के आदर्शवादी या किसी भी मानव के लिये अपने देश की स्थिति निराशाजनक लग सकती थी रूस का समाज इस समय अपनी तमामबुराईयों के साथ (जिसमें कृषिदासों की निर्धनता तथा अबोधपन, याजक वर्ग की अनभिज्ञता तथा मिथ्याचार, शासन प्रबन्धी क्रूरता, निरंकुशता, अक्षमता भ्रष्टाचार, व्यापारी वर्ग को अमानुषिक निर्दयता, तुच्छता, तथा खुशामदखोरापन सम्मिलित थे) पानी पर बुलबुले के समान हो गया था।

1830 में मास्को विश्वविद्यालय में एक नवयुवक निकोलस स्टानकेविच ने युवकों को अपने छोटे से जीवन में (1813-1840) बहुत प्रेरित किया। तुर्गेनिव ने उसी के चरित्र को पकोरसकी के नाम से "रूदिन" नाविल में ढाला है। स्टानकेविच ने जर्मन रोमान्टिक साहित्य बहुत पढ़ा था तथा उसने एक नवीन आस्था दर्शन शुरू किया जिसने रूढ़िवादी चर्च को पीछे डाल दिया। स्टानकेविच का विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्य यदि स्वयं का सुधार कर ले तो फिर

सामाजिक सुधार की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह हीगेल का अनुयायी था अपने दूसरे युवक साथी निकोलाई का ग्रोनोव्सकी के समान। ग्रानोव्सकी रोमन चर्च व कानून के सभ्यतादायी रूख को दोहराता और रूस के कल्चर की जड़ें बाइजेन्टाइन सभ्यता में देखता। 1830 में सेना से मुक्त होकर मीखाइल बकानिन भी मास्कों आया। उसमें दूसरों के विचारों को लेकर उस पर अपना ठप्पा लगा कर नया रूप देने की क्षमता बहुत थी। उसने सेन्ट साइमन होलबाक, हीगेल, प्राउंघन, फयरबक वेटलिंग सभी के सिद्धान्तों को अपने में समोया। इस समय सेन्सर तो था पर इस सरकारी शत्रु संघ ने टीचरों, प्रोफेसरों, साहित्यकारों, भाषण देने वालों के उग्रवादी विचारों, उदारवादी धारणाओं को फैलाने के विरूद्ध कोई आला नहीं निकाला है।

जार निकोलस प्रथम दिसम्बरियों से परेशान था तथा स्वयं का अनास्तिकता उदारतावाद तथा क्रान्ति का दमन करने के लिए भेजा गया देवी दूत समझे बैठा था तथा प्रत्येक राजनैतिक विरोध का भारी दमन करने के लिए तत्पर रहता था। इस कारण रूस में 20 वर्ष तक तूफान से पूर्व वाली स्तब्धता छाई रही और इन्हीं वर्षों में क्रान्तिकारी विचारों को फलने फूलने का अच्छा अवसर मिला। प्रतिबन्धों में इस समय कोई बड़ा आन्दोलन हो नहीं सकता था कुछ छुट पुट घटनायें हुई। जैसे पौलेन्ड का विद्रोह, कृषकों का उपद्रव तथा छात्रों की अशान्ति) इससे सरकार इस ओर से कुछ संतुष्ट कुछ उदासीन रही और 1845 से उदारवादी विचारों की फैलाने वाली पत्रिकाओं को फलने फूलने का मौका मिल गया। इसमें मुख्यत: दो पत्रिकायें अतशेस्तविनी जापीस्की (पितृभूमि के स्वर) एवं साव्रयोमेनिक (समकालीन) नानाप्रकार के सरकार विरोधी लेख छापते रहे। यद्यापि बुलगारिन तथा ग्रेक ने इसकी बुराई की पर उस समय के शिक्षा मंत्री काउन्ट उवारोव (जो "कटटरपन, निरंकुशवाद एवं जनसाधारण" नामक पुस्तक लिख कर स्वंय को उदारवादी बुद्धिजीवी बना बैठा था इस समय ऐसे लेखों पर अंकुश लगाकर स्वयं को प्रतिकियावादी नहीं कहलवाना चाहता था तथा उसने इस ओर ध्यान ही न देना उचित समझा। इस प्रकार बेलिन्स्की जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी साहित्यकारों के लेखों को इस समय भले ही काट छांट झेलनी पड़ी हो बकिया उदारवादी प्रेस सेन्ठ पटिर्जवर्ग में निस्सन्देह फल फूल रहा था 1845 में गोगल को बेलिन्स्की के पत्र "मित्रों से पत्र व्यवहार के कुछ चुने पन्ने" (जिस में सरकारी तथा समाजी ढांचे पर आक्रमण था) चोरी छिपे तमाम बांटे गये मास्को पर्टिजवर्ग में भी ओर इसी कारण दस्तायवस्की को दंड भी भोगना पड़ा। 1848 को क्रान्ति ने यह सभी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ कुछ समय के लिए स्थगित कर दी।

21.5 1848 एवं रूस:

यद्यापि यह वर्ष क्रान्ति के परिणामों की दृष्टि से महत्वपूर्ण न हो पर हरजेन के अनुसार यह गर्म तपते दिन के पश्चात की फुहार के समान यूरोपियन समाजवाद अवश्य था। एक साहित्यक तूफान जो 1836 में Chaadaev affair के साथ आया था। 1830 में पेरिस से निर्यात किए यूटोपियन समाजवाद ने रूसी अतवादियों को प्रभावित किया। पोलेन्ड का विद्रोह तथा एक शताब्दी पश्चात स्पेन का गृह युद्ध, इटली फ्रांस प्रशा तथा आस्ट्रिया की क्रान्ति सभी में राजनैतिक पार्टियों का वर्तमान संयोजन तथा तत्पश्चात विद्रोह कुछ इन्हीं अतिवादी समाजवादी बुद्धिजीवियों के सहयोग से किया। परन्तु इस समय 1830-40 का रूसी बुद्धिजीवी

हर्जेन एवं ओगाखे के समान भले ही दार्शनिक, सौन्दर्यपरक राजनैतिक तथा सामाजिक प्रश्नों के प्रति जागरूक हो वह उतने लोकप्रिय नहीं थे न ही उनके पास कोई ऐसा मध्यम वर्ग ही था न ही कृषक वर्ग। बेलिन्सकी न इसी लिए 1846 में लिखा था कि "लोगों की आलुओं की आवश्यकता का तो अनुभव होता था पर संविधान के अभाव का आभास न था। अपने अधिकारों के प्रति चेतना का अभाव तथा 1848 के पश्चात के 7 काले वर्ष कई रूसी चिन्तकों को ले आए। इन में पत्रकार पॉलीवॉय इतिहास का रसिया तथा चाय का विक्रेता बोतकिन, बेलिन्सकी, तुरगनिव सम्मिलित थे। विद्रोही रूसी बुद्धिजीवी वर्ग ने 30 वर्ष पश्चात पश्चिमी विचारों का निर्यात कर उन्हें अपने देश के साचें में ढालने की चेष्टा की। इस प्रकार हीगेल, मिल, स्पेन्सर तथा कोम्ट के विचारों को रूसी आवश्यकताओं के अनुसार ढाला गया।

1830 से फ़्रांस की गतिविधियों तथा फ्रांसीसी यूटोपियन सोशलिज्म ने रूसी समाजवादी विचारों को वशीभूत किया पौलेण्ड की क्रान्ति डेमाकेथ्स को, तथा एक शताब्दी पश्चात समाजवाद ने स्पेन को उसकी गृह युद्ध के बाद, परन्तु पाश्चात्य आस्था यही बनने लगी कि रूस से निरंकुशता हटना असम्भव थी। 1848 का महत्व एक मोड़ जैसा है न केवल क्रान्तिकारी समाजवाद का नेतृत्व करने वाले मार्क्स तथा एगेल्ज के नीति घोषणा पत्र के कारण बल्कि यूरूपी क्रान्ति की असफलता के कारण भी। 1848 के पाश्चात के 7 वर्ष में रूसी चिन्तकों ने रूस में मानवीय अधिकारों तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता के पूर्ण अभाव को तथा यूरोपी उदारतावाद को समझ लिया। इसी जागरूकता से आशा की किरणें फूटी। सरकार की क्रान्ति की महामारी के प्रकोप से बचाव के लिए लगाई गई नीतिसंगत संगरोधन ने पाश्चात्य उदारवाद को समाप्त कर आन्तरिक तथा राजनैतिक वातावरण में ठहराओ लाकर रूसी प्रगतिवादी आन्दोलन को नया मोड़ दिया जो क्रान्तिकारी तथा सुधारवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रवादी था। परन्तु इससे रूसी बुद्धिजीवियों के मध्य एक गहरी खाई सी हो गई जिसमें नारोदनिक एक ओर तथा च्यरोनी रोव्सकी दूसरी ओर था। यह विच्छेद 1848-56 तक बहुत बढ़ गया। स्तैवोफिल तथा पाश्चात्य विचारों के बीच तनाव सा गया। पहले बेलिन्सकी तथा हर्जनवाद विवाद करके भी पारस्परिक द्वनदता से दूर थे पर 1859 में हर्जेन की चिचरन से भेंट लंदन में दो शत्रुओं की भेंट बन गई।

1860 से नर्मदलीय गुट "बेल" (कलाकोल, घण्टी) तथा सेन्टपीर्टजवर्ग के झगड़े बढ गए। 1890 में भी पाश्चात्य कट्टरपंथी, रूसी सोशल डेमोकेटस, क्रान्तिकारी बुद्धिवादियों की आशायें जीवित थी। रूसी बाये बाजू वाले क्रान्तिकारियों ने विशेष रूप से विश्व की क्रान्ति में भी अपनी साहसी क्षमता बनाए रखी। यह बड़ी दिलचस्प बात थी कि सरकार की कड़ी पाबन्दी के बावजूद भी कुछ ऐसे कारण थे कि क्रान्तिकारी गतिविधियां फिर भी चलती रहीं।

21.6 रूसी नारोदनिक (पापुलिस्ट)

पापुलिज्म किसी राजनैतिक पार्टी अथवा सिद्धान्त का नहीं बल्कि एक उग्रवादी आन्दोलन का नाम है जो रूस में 19 वी शताब्दी के मध्य में जार निकोलस प्रथम की मृत्यु तथा कीमिया युद्ध के मानभांग के पश्चात प्रारंभ हुआ तथा 1860-1870 में जोर पकड गया तथा जार एलेकजेन्डर द्वितीय की मृत्यु के साथ समाप्त होने लगा। यह नारोदिनिक गुट वैसे

तो विभिन्न तत्वों का मिश्रण थे और उपाय, साधन व लक्ष्य के प्रति उनकी धारणाओं में मतभेद था परन्तु उनमें कुछ ऐसे मौलिक उभयनिष्ठ विश्वास भी थे जो उन्हें एक गुट बनाते थे। 1820 के दिसम्बर षडयन्त्रकारियों तथा 1830-40 के हर्जेन बेलिन्सकी के अनुयायियों के समान वह भी इस राजनैतिक, सामाजिक ढांचे तथा तुच्छ जीवन नैतिक मूल्यों के विरूद्ध थे। यद्यापि उनमें कुछ भी नवीन न था। वे यूरोपी अतिवादियों के लोकतन्त्रात्मक आदर्शो को लेकर चले थे उनका विचार था कि सामाजिक तथा आर्थिक वर्गो के मध्य चलने वाला युद्ध ही राजनीति की रूप रेखा निर्धारित करता है। उन्होंने उसे मार्क्सी रूप (जो रूस में पूर्णतय: 1870 तक नहीं पहुंचा था) नहीं बल्कि एक दूसरी आकृति दी जो हर्जेन प्राउधन तथा उनके पूर्व सेन्ट साइमन, फोरियर व अन्य समाजवादी तथा अतिवादियों की कृतियों में निहित था। यह कृतियां रूस में कानूनी तथा गैर कानूनी रूपसे बराबर, धीरे- धीरे कभी कम कम पहुंच अवश्य रही थीं।

नारोदनिकों के उद्ददेश्य थे समाजी न्याय तथा सामाजिक समानता इनमें से अधिकतर हर्जेन के नेतृत्व में सन्तुष्ट थे जिसने 1850 में यह कहा था कि "न्यायपूर्ण समानतावादी मूल्यों पर आधारित समाज तो पहले से ही रूस के कृषक वर्ग के समुदायों में था। अधिकतर रूसियों को खाने कपड़े की आवश्यकता थी। पापुलिस्ट रूसी स्लांवोंफिल (जिनसे उनके विचार नहीं मिलते थे) के समान वर्गों की श्रेणियों की श्रंखला से भयभीत थे। इस समय विशेष की मानसिक दशा तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति का अनुमान व्यंगकार साल्तीकोव की जर्मन तथा रूसी लड़के के संवाद तथा स्थिति से लगाया जा सकता है। जार के अंधकारमय युग के प्रकोप से यह रूसी लड़का फटे कपडों में, भूखा दलदल में लडखडा रहा था क्योंकि उसने अच्छे साफ सुथरे जर्मन लड़के के समान अपनी स्वतंत्रता कुछ पेंन्स के लिए प्रशा के हाथ बेच दी थी। रूसी लड़के का कथन अब अमर हो गया था "कि रूसी इस योग्य था कि यदि उसे मौका दिया जाए तो वह अपने मानवीय अधिकारों को प्राप्त कर ले। रूस अंधकार की जन्जीरों में जकड़ा अवश्य था पर उसकी आत्मा कैदी न थी। रूस का अतीत काला हो सकता है पर उसका भविष्य उज्जवल जहां मध्यमवर्ग की मृत्यु ही उस का अन्त न थी जैसा कि जर्मनी फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में हो रहा था।"

स्लेवोफिल के विपरीत, रूसी नारोदनिक अपनी आशाओं को केवल रूसियों के अदभुत चरित्र तथा भाग्य पर नहीं केन्द्रित किये थे। उनका मत था कि विज्ञान तथा पाश्चात्य सभ्यता की उत्तमता को भारी कीमत चुकाए बिना भी तो प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व दिया परंन्तु यह प्रश्न अवश्य उनके सामने था कि क्यों अनपढ़ खेतिहर जनता को बिना अर्थ समझाए ही पुराने ढांचे को उखाडने विद्रोह करने को उकसाया जाए जब कि वे इसके महत्व से अनिभिज्ञ हैं। सभी इसी प्रकार से सोच रहे थे सब का एक उद्देश्य था। बकृनिन तथा स्पेश्नव, ने 1840 में, च्योनीशव्सकी ने 1850 में, जायचनेव्स्की, युवा रूस के जैको बेन नेचाएव, तेकाचव तथा लेनिन व ट्राटसकी सभी ने अपने ढंग से इसे समझा दर्शाया 1860 के आंतकवादियों इशतीन तथा कराको सब ने प्रश्न उठाया कि इसकी क्या गांरटी कि नए शासक कम क्रूर होंगे। 1870 के युवा जो एक "पश्चातापी अनुतप्त भद्र पुरूष" थे ये सामाजिक खराबियों के लिए उदारवादी शिक्षा को दोषी ठहराते थे। कुछ (जैसे बकूनिन) ने नारोदिनिक न

होकर भी बुद्धिवादियों, बुद्धिजीवियों तथा प्रवीण पुरूषों पर भरोसा न करने की राय दी। क्योंकि यह वर्ग भी उन्हें क्रूरता का शिकार बनाएगा। 8 च्योर्नशव्सकी तथा क्रापोत्कीन ने इस प्रश्न की बोझलता को पूर्ण रूपस से अनुभव किया। क्या किया जाए यदि कृषक वर्ग क्रान्तिकारियो के स्वप्नों का विनाश कर दें। क्या उन्हें धोखे में रखे? 1874 में अतिवादि नारोदनिकों को लोगों को उदासीनता घृणा, आक्रोश तथा संदेह का पात्र बनना पड़ा जिन्होंने उन्हें पुलिस में दे दिया। नारोदनिकों को तब अपनी स्थिति तथा अभिवृत्ति का ब्यौरा देना पड़ा। तिकाचव नेचायव एवं पिसाखे के अनुयायी निहिलिस्ट (शुन्यवादी तथा नाशवादी) कहलाए।

21.7 बुद्धिवाद तथा बुद्धिजीवियों की उत्पत्ति तथा स्वरूप

क्रान्ति के लगभग एक शताब्दी पूर्व 1816 में प्रथम गुप्तांग राजनैतिक संघ बनी जिसने 1825 में दिसम्बर षडयन्त्र द्वारा सुधार के लिए विद्रोह किया। सच तो यह है कि कुछ बुद्धिजीवियों ने अनजाने में ही ऐसा वातावरण बनाने में सहायता की जो लोगों के हृदय में क्रान्तिकारी विचारों के लावे को पकाती है। उदाहरणतय: 1790 में रादीचेव की प्रसिद्ध पुस्तक भेन्ट पीर्टजबग से मास्को तक की यात्रा में पहली बार कृषिदासता तथा निरकुंशता व तानाशाही ही खुल्लम खुन्ना आलोचना की गई। यद्यपि रादीचेव का उद्देश्य दूर दूर भी शायद कोई राजनैतिक मुहिम चलाना न रहा होगा पर यह उस युग की घुटी हुई आवाज थी जो समाज के दर्पण साहित्य में दृष्टिगोचर हुई। दिसम्बरी षडयन्त्रकारियों के समूह का उद्देश्य इस समय केवल तानाशाही तथा संवैधानिक परिसीमा को दूर करना तथा कृषकों की दशा में सुधार तथा देश में समाजवाद की रीति का बीजारोपण था। इसमें सबसे अधिक गर्मदल के क्रान्तिकारी जैसे पेस्टल भी जनशक्ति पर भरोसा नहीं रखता था कि वह स्वतंत्रता ला सकेंगे। दिसम्बरी समूह में क्रान्ति प्रथा का अभाव भी था वे असफल रहे। निकोलस प्रथम के युग में उनके विरोधी ग्रुप जो स्वयं को सोशलिस्ट कहता था बढ़ा और उसने स्वयं को पश्चिमी ग्रुप के संहित क्रान्तिकारी समाजवाद का नारा उठाया सैद्धान्तिक रूप से तो 1825 के 30 वर्ष पश्चात अर्थात 1855 में निकोलस की मृत्यु के बाद (या फिर कुछ कहते है उससे पहले 1849 तक) रूसी समाजवाद पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। इस संदर्भ में प्रत्येक दृष्टिकोण से 1838 से 1848 एक महत्वपूर्ण दशक है। तुग्रेनिव, टाल्स्टाय, गोनचाख, दस्तायव्सको बलिन्स्की, बकानिन, हर्जेन इत्यादि के उभरने के साथ ही यह बुद्धिजीवी वर्ग रूस तथा तत्पश्चात विश्व में एक नवीन लौकिक तथा धर्मनिरपेक्ष सम्प्रदाय के समान उभरा जो एक दूसरे से केवल विचारों की समानता से ही नहीं बंधा था बल्कि एक सामाजिक दायित्व विशेष मूल्यों को समर्पित होने वाली भावनाओं से जुड़ा था।

नेपोलियन के ऊपर विजय तथा पैरिस की ओर उग्रसर होना ऐसी घटनाएं थी जिन्होंने रूस को अपार साहस तथा आत्म विश्वास दे दिया। साथ ही इस मुकाबले में एक जुट होने से एक नई एकता, राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की भावना जागृत हुई जिसने उन्हें एक बन्धन में बांध दिया-सभी वर्ग, श्रेणी तथा धर्म के विचारों से ऊपर। इस सामूहिक जागरूकता तथा देशभक्ति ने आन्तरिक कठिनाईयों के प्रति रूसियों की उनके दायित्व का एहसास दिलाया। लगभग इसी समय स्वच्छन्दतावादी (रोमेन्ट्रीसिज़्म) तरंगे फूटीजिस के अंतर्गत इस प्रकार के विचार प्रचलित होने लगे कि राष्ट्र एक समुचित, सुसंगठित अवयव संस्थान है जिसका प्रत्येक

जीवन, गुट संस्था सभी, में एक "अन्तरात्मा है" एक उद्देश्य है, इसी उद्देश्य की पूर्ति की लालसा से ओत-प्रोत हो गयी रूसी सरकार। अपनी इस तरूण पोद को नई युवा नस्ल को फ्रांसीसी क्रान्तिकारी वातावरण में भेज कर प्रादुषित नहीं करना चाहती थी। जर्मनी में वातावरण कुछ उचित लगा तथा सरकार ने अपने युवा वर्ग के लिए जर्मनी को बेहतर करार दिया। यह दूसरी बात है कि जर्मनी भेजने से भी परिणाम वहीं-तथा आशाओं के बिल्कुल विपरीत निकला। जर्मनी में इस समय फैली यह धारणा कि पाश्चात्य देशों का पतन संशयवाद, तर्कणवाद भौतिकवाद तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं को तजने के कारण हुआ। अतएवं जर्मनी जिससे अपनी शक्ति इस व्यर्थ निरर्थक अनुधावन में नहीं गवाई थी अब दोड़ में आगे सहजता से जा सकता था क्योंकि साहसी तथा तरूणा राष्ट्र था। इस मापदण्ड से रूसियों को अपनी दशा जर्मनी से अधिक उन्नति के योग्य उन्नति के योग्य लगी क्योंकि उनके पास इस "अपरिश्रान्त शक्ति" का अभाव न था। जैसा पहले बताया गया है रूस में इस समय एक निरंकुश कूर सरकार, शोषित जनता तथा इन दोनों के मध्य में कुंठित (पर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित) शिक्षित वर्ग था । यह विचार कि प्रत्येक जीव एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आया है रूस में फैला। साथ ही साथ शिक्षा तथा ज्ञान के प्रति एक लालसा, रूसियों में उभरी उदार रूसी को जर्मनी शिक्षित थे वे एक ओर तो चर्च दूसरी ओर बुद्धिवाद दोनों से दूर थे। इस प्रकार रूसी साहित्य में दो नए रंग उभरे, एक रूसी दूसरा फ्रांसीसी। हीगेल तथा हीगेलवाद का प्रभाव रूसी विचारधारा पर प्रारम्भ में छा गया- उसके बाद डारविन स्पेन्सर तथा मार्क्स छाए। 1840 में मास्कोविश्वविद्यालय में ग्रानेव्स्की के लेक्चरों को पाश्चात्य उदार बुद्धिवाद का राजनैतिक दिखावा बताया गया। क्योंकि अभी तक उदारतावाद को रूस में मुखौटे की आवश्यकता थी। जार केसेन्सर ने साहित्य में राजनीति घोल दी थी पर उसके भय ने खुलकर रोने के बजाय सिसकियों पर विवश कर दिया था।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि रूसी क्रान्ति पूर्णतय: उस दर्रे पर नहीं गई जिसके लिए शायद इन चिन्तकों ने स्वप्न देखा था पर इन बुद्धिजीवियों तथा दार्शनिकों (उदाहरणतया: टालस्टाय अथवा कार्लमार्क्स) का प्रभाव न हुआ हो या उन्होंने क्रान्ति को एक नया मोड़ न दिया हो ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। विचारों का प्रभाव क्या होता है यह नाजियों भली भांति जर्मनी में समझा था तभी तो विजयों के पश्चात फौरन ही वह बुद्धिवादी नेताओं को मार डालते थे क्योंकि उन्हें वे अपने मार्ग को सब से बड़ा रोडा समझते थे। अतएवं जो कुछ हुआ वह शायद इन विचारों के प्रभाव के बिना कुछ दूसरा रूप धारण कर लेता तथा इन विचारधाराओं का प्रभाव रूस ही में नहीं, उसकी सीमाओं के बाहर तक पहुंचा, समाज सुधार के लिए कला० तथा जीवन के बीच की खाई को मिटाकर समाज की बुराईयों को दूर करने की बात साहित्य में उतरने लगी। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि रूस बौद्धिक तत्वों की दृष्टि से जर्मनी का पराधीन हो गया। शीघ्र ही ऐसा लगने लगा कि इस समय रूस अद्भुत रूप से एक अतिसंवेदनशील, आशु प्रभावित समाज का देश बन गया। अब चाहे यह इस कारण हो कि चोरी छिपे खुलकर, अथवा लेक्चरों द्वारा नया नया क्रान्तिकारी मटीरियल नई विचार धारा के लिए मिल गया था न केवल पैरिस से बल्कि बर्लिन से। हीगेल मसीहा लगने लगे। प्राउधन कैबेट, फूरियर, स्ट्रास, लुदविग, फ़्योरबक, लामेंनेस सभी के विचारों ने जैसे रूसी समाज को अपने

चकव्यूह में घेर लिया। यह कथन कि रूसी लोग इस समय विषुष्ण, उदास, जख्मी सूफी के समान थे पाश्चात्य अतिश्योक्ति है। रूसी इस समय अत्यधिक चिन्तनशील, बुद्धिसम्पन्न तथा युक्तियुक्त थे। साहसी भी। आंतकवादी कावीशिन्सकी ने, रूसियों के लिए कहा कि वे जोशीले थे पर उद्देश्य के लिए लड़ने पर तैयार तथा सदैव ही विवेकी व तर्कसंगत। हजेन ने एक बार इसी लिए कहा था" हम उसूली लोग है सच्चे तत्थ अच्छे-जर्मन सामर्थ्य में यदि हम अपनी राष्ट्रीय योग्यता मिला दे- हम नीरस सर कटाने को बेचैन साहस पूर्वक सीमाओं को पार करने का हौसला रखने वाले। पर साथ ही सच के साथ तर्कविधा के साथ ऐसी भावनाओं से जकड़े कुछ ही गिने चुने लोग थे। फिर भी उन्होंने मुक्ति रूस को दिलाई एक ओर रूढ़िवादी चर्च के दबाव से दूसरी ओर 18 वी शताब्दी की नीरस बुद्धिवादी विवेकशीलता से। अब फीशते हीगेल शेलिंग बड़े। इस प्रकार रूस का 19 वीं शताब्दी का साहित्य यद्यपि जार, पश्चिमी, बुरज्वा लोकतंत्र तथा साम्राज्यवाद के विरोध से परिपूर्ण तथा उसी पर आधारित है परन्तु इसमें फ्रांसीसी क्रान्ति की उपलब्धियां, पाश्चात्य उन्नति व औद्योगिक क्रान्ति तथा उसकी भौतिक प्रगति की चेतना व रसास्वादन मिलता है इसी लिए यह कहा गया है कि 1917 की क्रान्ति रूस की बुरज्वा क्रान्ति का समापन तथा समाजवादी क्रान्ति का आरम्भ था।

21.8 बुद्धिजीवी-संविदा तथा सिद्धान्त

बेलिन्सकी का नाम रूस के अंधेरे में एक दीप जल में तुबी के समान था। वह अपनी मृत्यु के 8 वर्ष पश्चात भी उतना ही जीवित था और उसके वजूद तथा विचारों को रूसी" बुद्धिवादियों का अंतःकरण" बताया गया है। "यदि आपको ईमानदार लोगों की खोज है जो निर्धनों तथा दलितों के मसीहा हो, योग्य डाक्टर हो, लड़ने से न डरने वाले वकील हो, तो उन्हें आप वेलिन्सकी के अनुयाइयों में ढूढें। इन पर स्लावोफिल का प्रभाव न होने के समान है तथा बेलिन्स्की का अत्याधिक हैं। पश्चिमी देशों में बेलिन्स्की को कम ही लोग जानते हैं फिनलेंड के स्वेवर्ग नामक स्थान पर एक निर्धन घर में 1810, 11 में जन्म लेने वाले, साहित्य का रसिया जिसके एक साधारण से कृषि दासता पर लिखे गए नाटकपर मास्को विश्वविद्यालय से उसे निकाला भी गया था। जिसने कहा था "रूसी साहित्य मेरा जीवन मेरा खून है" उसने तथा पुष्किन ने लरमान्तव, गोगल तुर्गनिव, दस्तायेव्स्की तथा उनसे कम पैमाने वाले गोनचाख, ग्रिगोरोविच कल सब इत्यादि की महत्ता को आका। यह अनोखी बात है कि साहित्य इस प्रकार समस्त जीवन तथा एक व्यक्ति सारे राष्ट्र के विचारों पर छा जाए। ऐसे समय में जब रूसी राष्ट्रीय स्कूल आगे नहीं बढ़े तथा पाश्चात्य चिन्तक हर्जेन तथा नर्मदलीय कावेलिन तथा ग्रोनोव्स्की पीछे रहे बेलिन्सकी अटल रहा। बकूनिन ने जर्मन न जानने वाले बेलिन्स्की को हीगेल के प्रचार से नया रंग दे दिया। साहित्यिक पुर्नजागरण के युग में बहुत से सितारे चमके जैसे कारामजीन, जूकोव्स्की, पुष्किन ग्रिवायदव, बराटिन्स्की, वेनोवितिनव, व्याजेम्स्को शाखोव्स्की, रीलीव तथा अदायव्स्की इत्यादि साहित्यक गोष्ठी "अर्जामाज" अपने तमाम अतिवादी विचारों की विजय के साथ रूढिवादी ही रही। बेलिन्सकी वैसे तो अपने बौद्धिक स्तर पर पश्चिमी भले ही रहा हो पर अपनी भावनाओं में पूर्ण रूप से, रूसी था। न वह कोई अन्य विदेशी जबान जानता था न ही विदेशी वातावरण में रह सकता था। जैसे जैसे समाजवादी तत्व बढे बेलिन्स्की

का तनाव बढा। वह स्वार्थवादी नहीं था। उसने स्लेवोफिलो को बताया कि अन्तिरिक तथा आध्यात्कि प्रगति भूखे पेट संभव नही न ही ऐसा समाज जिसमें सामाजिक न्याय तथा मानवीय अधिकारों का अभाव हो प्रगतिशील हो सकता है। कुछ प्रकृतवाद के विरोधियों ने बेलिन्स्की पर कुछ एतराज किये हैं, परन्तु भय तो बलिन्स्की नही जानता था क्योंकि वह मजबूत तथा सदभावी व निष्कपट था उस का अन्तःकरण साफ था।

19वी शताब्दी का दूसरा महत्वपूर्ण रूसी राजनैतिक चिन्तक तथा लेखक ऐलेक्जेंडर हर्जेन दो। यधपि उसकबारे में बहुत कुछ नहीं लिखा गया पर उसके प्रति सारी तफ्सीलात हमें यूरोप फ्रांस, स्वीटजरलैंड, इटली, पैरिस रोम इत्यादि के स्त्रोतों में बिखरी मिल जाती है। एलेक्जेन्डर इवानोविच हर्जेन का जन्म 1812 में मास्को में हुआ। उसका पिता इवानयकोवलव रूस का एक अमीर आदमी था पर बहुत कठिन तनावपूर्ण आदतों का जिससे उसके बेटे को अच्छी खासी दुखदायी स्थिति का सामना रहता। उसकी माता लीजा हैग जर्मन थी परन्तु यकोवलव ने उसे पली का दर्जा कभी नहीं दिया तथा अपने बेटे को अपना नाम न दिया वैसे सभी आराम थे। हर्जेन ने अपनी आत्मकथा में अपने घर तथा समाज की घुटन का उल्लेख किया है। 19वी शताब्दी के समृद्ध घरानों के बच्चे नई पुरानी परम्पराओं के मध्य की लाइन पर रह कर नवीन, प्रगतिशील विचारों के साथ बढते थे। परन्तु उनमें अधिकतर मायूस होकर सुधार को असम्भव समझ बैठ रहते थे तथा अपनी जमीनदारी में मस्त हो जाते। हर्जेन इनसे अलग कुछ कर गुजरना चाहता था कि वह तथा उसका खानदान अमर हो जाए। अपनी मशहूर पत्रिका "घन्टी" (कालाकोल) में उसने न केवल समाज के नासूरों से नकाब उठाया, उसकी बुराइयों की निन्दा की, प्रवचन दिये बल्कि वह रूस का 19वी शताब्दी का वालेयर बन गया। यधपि उसकी कृतिया निषिद्ध थीं पर न केवल पूरे रूस में अतिवादियों तथा रूढिवादियों के मध्य चाव से पढी जाती बल्कि स्वयं जार भी उनसे आनन्द लेता 1850-60 के रूस में उदारवादी भावनाओं को छूने का कार्य केवल हर्जेन की लेखनी ने किया। उसके मित्र एनेकोव ने अपने निबन्ध " एकु विशिष्ट दशक" हर्जेन की मृत्यु के 20 वर्ष पश्चात उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा था कि वह अपनी तथा आने वाली पीढियों के लिए अपार शक्ति का मावन था।

हर्जेन पर भी हीगेल का प्रभाव था पर इसको उसने अपने व्यक्तिगत रूप में ढाल लिया था। 1840 के प्रारम्भ में हर्जेन का "अविश्वास" जिसे उसने "डाइलेटटनटिज़्म" तथा "बुद्धिज़्म" कहा है सामने आता है। इसे उसने दो भागों में विभाजित किया है एक वह जो केवल सतह पर गुब्बारे के समान उड़ता है और अपने व्यक्तित्व को उस भरे जंगल में खो देने के डर से पेड़ों को भी नहीं देखता। ऐसे व्यक्ति को सही बोध सही ज्ञान नही प्राप्त हो पाता। दूसरा व्यक्ति जो बुद्धिस्त (बोद्ध) है पेड़ों में ही स्वयं को खोता है या उन्हीं पर वह दूरबीनी निरीक्षण द्वारा ज्ञान प्राप्ति करता है। वह आंख बन्द कर विषयासक्त हो जाता है तथा एक विकषंक एवं सख्त मानव बन जाता है। हर्जेन समझौता, नर्मी तथा सुनहरे "मज्झिम परिपदा" का प्रचार करता था पर स्वंय उससे दूर था। हर्जेन ने व्यक्ति तथा वर्गो के मध्य चलती लड़ाई को समझा व अपनी आत्मकथा में लिखा है। हर्जेन ने "दूसरे साहिल से" नामक पुस्तक (जो उसने 1848,49) की क्रान्ति से मोह निवारण के पश्चात लिखी थी में यह इशारा दिया था कि "कोई निश्चित समय

सारणी कोई अन्तिरिक्षी प्रतिमान नहीं होता- यहां इस संसार में केवल जीवन प्रवाह की उत्तेजना, इच्छा है। कभी कभी पथ बने रहते है- कभी कभी नहीं - जहां कोई पथ नही रहता वहां प्रतिभाशाली लोग विस्फोट द्वारा मार्ग बना लेते है "हर्जेन व्यक्तिगत स्वाधीनता का रसिया था। उस का ही कहना था कि" स्वाधीनता महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्वयं अपने में एक लक्ष्य है। उसे कुरबान करना मानव की कुरबानी के समान है। बकानिन तो लक्ष्य के लिए एक महान विद्रोह तथा मृत्यु का समर्थक था, परन्तु हर्जेन का विचार था कि मसलों के समाधान की चेष्टा तो करनी चाहिए पर कोई गारण्टी नहीं कि वह सुलझ ही जाए। हर्जेन की यह मनोवृत्ति यह विचार उसके उपन्यास "किसे इल्जाम दें"? के अन्त से भी टपकता है चेखोव का कथन कि "सहित्य समाज का दर्पण तो है पर साहित्यकार मसलों के समाधान करने वाला प्रबन्धक नहीं बन सकता (उसे इस इल्जाम से मुक्ति देता है पर बुगोनिव जीवन की ट्रैजिडी तथा उच्च नीच को दूर से डंडे, निर्लिप्त, तथा कभी कभी उपहासजनक ढंग से देखता था। धर्म तुर्ग्रेनिव के लिए जीवन का एक अंश एक मसाला था। उसके खमोश शान्तिपूर्ण ढंग ने जहां बहुत सी साहित्यक कृतियां दी वहां क्रियाशील दस्तायव्सकी तथा टाल्स्टाय को अप्रसन्न कर दिया।

टालस्टाय के प्रति 1870 में मीखाईलोव्सकी ने लिखा था कि वह योग्य कहानीकार पर अयोग्य चिन्तक था। परन्तु टाल्स्टाय के सकारात्मक विचारों को 18वी शताब्दी के फ़्रांस के प्रबुद्ध युग की प्रतिध्वनि कहा जा सकता है। वह न तो अतिवादी यूरोप पर मिटा बुद्धिजीवी था न ही स्लावोफिल-एक इकाई तथा राष्ट्रीय अधिपति पर विश्वास रखने वाला। वह सदैव ही पाश्चात्य तथा अन्य विचारों को काटते हुए तथा अपनाते हुए चलता था। अतिवादियों के समान वह राजनैतिक दमनकारी नीतियों असमानता तथा शोषण के विरूद्ध था परन्तु उसका विश्वास सामाजिक, राजनैतिक सुधारों डेमाक्रेसी, भौतिक उन्नति में अटूट था। वह न केवल जार को बल्कि "प्रोग्रेसिस्ट" के जुए को भी जनसाधारण के कन्धे से उतारना चाहता था। कोबेट, कार्लायल, प्राउधन तथा लारेन्स के समान ही वह भी पोलियामेंटरी डेमाक्रेसी, औरतों के अधिकार तथा वोटिंग के प्रति जागरूक था। स्लावोफिल के समान वह वैज्ञानिक तथा थ्योरेटिकल सामान्योकरण के विरूद्ध था। प्रबुद्ध लोगों के समान वह व्यक्तिगत सुधार के चर्च तथा राष्ट्र के सुधार का द्वार समझता था। उस की अनेकों पुस्तकों के अलावा 1861-62 में उसने "यासनाया पोल्या" नाम की एक पत्रिका भी निकाली थी। उसने इंग्लैड, फ़्रांस, स्वटिजरलेंड, बेल्जियम, जर्मनी की यात्रा से बहुत नये विचार बनाए। रूसो तथा कैन्ट के समान वह मानव की भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं को समझता था। यदि यह जरूरतें पूरी हो जाती है तो वह सन्तुष्टि तथा उससे उत्पन्न लक्ष्यों की पूर्ति कर पाता है।

इवान तुर्गेनिव की मृत्यु (1 अक्तूबर 1883) से पहले तथा बाद उसपर बाये दायें दोनों ओर से हमले रहे। उसकी "फादर्ज एण्ड चिल्डरेन" 1862 में "नये मानव" का दर्शन होता है। उसके विचार से मष्यकालीन मनुष्यों में संतोष था शक्ति नही थी। आज के मानव के मानव के पास शक्ति है संतोष नहीं" तुर्गनिव अपने मित्रों फलोबर्ट। तथा रेनिन से अधिक सचेत, उत्तेजना पूर्ण तथा विषयासक्त था।

यूरोप की 1848-49 की क्रांति रूस की दो पीढियों के बीच का अंतराल तथा विभाजित करने वाली एक लाइन के समान था। बेलिन्सकी के अतिरिक्त (जो 1847 में रूस में मर गया) यह पूरा "चालीसा" पश्चिमी यूरोप चला गया (चाहे कुछ दिन को या सदा के लिए) । बाकुनिन सैक्सोनी में पकडा गया तथा दस वर्षो तक 3 अन्य देशों तथा साइबीरिया में भटकने के पश्चात यूरोप आया तो केवल उस समय जब नई रेखाओं ने दो सीमाएं खींच दी थी। केवल हर्जेन, तुर्गनिव रह गए जिन्होनें अपने अपने ढंग से नई पीढ़ी के सम्मुख पुरानी परम्पराओं की प्रतिरक्षा की।

च्योनेशेव्सकी 19वी शताब्दी के इस चालीस को साठे में ले गया। वह हर्जेन का शिष्य था परन्तु उनकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वता 1850 से प्रांरभ हुई तथा दो पीढ़ियों को अलग कर गई। कारण यह था कि हर्जेन ने 1859 में लन्दन की एक पत्रिका "बेल" में, अंग्रेजी में एक निबन्ध "अत्यधिक खतरनाक" लिखा जिसमें उसने च्योरनेशव्सकी तथा उसके मित्रों की उनके अनन्य अतिवाद के लिये आलोचना की। "साठवीं" के लोगों ने फख से रोमान्टीजिस्म" के त्रिस्कार का दावा किया तथा सख्त वास्तविकता के लिए दार्शनिक आदर्शवाद को भौतिकवाद में तथा मेटार्फिजिक्स को साईन्स में बदला। यद्यपि कैथराइन के युग में पाश्चात्य यूटोपिया तथा प्रबुद्धता रूसी दरवाजे तक पहुंच चुकी थे, पर रूस की राजनीति तथा जीवन पर इसका प्रभाव नहीं हुआ था। अतएवं च्योरशैव्सकी के विचारों में तर्कण पद्धति को जो स्थान मिला वह केवल फ्रांस तथा पश्चिमी यूरोप में उभरे 18 वी शताब्दी के विचक्षणता का प्रतिबिम्ब मात्र था। इस वैज्ञानिक युग में च्योरनशव्सकी फीवरबक का भक्त हुआ। उसने कामटे की पृष्ठीय पृष्ठ तथा डारविन की थ्योरी योग्यता की उत्तरजीविता" के स्थान पर अंग्रेजों का लाभार्थी थीं (यूटी लिटेरियन) दर्शन विशेषतय: जान स्टुअर्ट मिल को) सभी समस्याओं का समाधान समझा। केवल व्यक्तिगत बुद्धिवादी तथा प्रबुद्धतावादी स्वार्थ को खोज तथा अनुसरण साहित्य द्वारा सामाजिक मूल्यों का विस्तार होता गया। 19 वीं शताब्दी की रूसी परम्पराओं पर आधारित हर्जेन की "किसको इल्जाम दिया जाए" 1862 में तुर्गेनिव के "पितागण तथा पुत्रगण एवं च्योंनशेव्सकी की "क्या किया जाए" इसी श्रृंखला की कड़ी थी। रूसी क्रान्तिकारी अबोधी थे और सभी एक समाजी ढांचा चाहते थे। यद्यपि च्योनशेव्स्की को नादोदनिक कहा गया पर उसकी क्रतियों में में उसी कृषकों की उस कम्पून की झलकी नहीं मिलती जो रूसी नारोदनिकों का प्रमाणक था। वह गांव से अधिक नगरों की ओर आकर्षित था। वह नारोदनिकों के समान रूस का बूरज्वा तथा पतनोन्मुख पश्चिम के सम्मुख बिना कारण रूस को महान कहना चाहता था।

बाल्वी पश्चिमी था पर उसका अटूटविश्वास समाजवाद, प्रगतिवाद तथा तर्कवितर्क में था। समाजवाद सभी लोगों के भविष्य के समाज का स्वप्न था। इस प्रकार प्रारंभिक रूसी समाजवाद का पोषण फ्रान्सीसी यूरोपिया तथा फ्रारियर के मनौवैज्ञानिक विचारों पर आधारित थी। "क्या किया जाए" में दर्जन के सहकारिता द्वारा यहीं दर्शाया गया कि समाजवाद की स्थिति में आर्थिक शोषण, प्रतिस्पर्धा जो पूंजीवाद का एक अटूट अंग है गायब हो सकते हैं तथा एक नवयुग का निर्माण कार्यकर्ताओं के पारस्परिक सहयोग तथा सहायता से किया जा सकता है तथा द्वन्दता दूर कर के एक की उन्नति दूसरे की उन्नति भी समझनी चाहिए। इसमें

च्योर्नशेव्स्की ने एक नागरिक का कर्तव्य भी दिखाया जो लोगों के पास जाकर गांव में कार्य करता है यह नारोदनिक आन्दोलन की मुख्य विशेषता थी। इस मानवीय निस्स्वार्थ चेष्टा के लिए अगली दो नस्ले (च्योरनशेव्स्की के पाठकों की) बड़ी प्रभावित थी।

च्योर्नशेव्स्की प्रबुद्ध युग को महत्व देता था यथा तथा डारविन से नहीं बल्कि कानडोरसेट से प्रभावित था। उसके लिए उन्नति अधिक महत्व रखती थी। अपने एक पत्र में जो उसने अपनी धर्मपत्नी को साइबीरिया के जेल से 9 वर्षीय सजा के दौरान लिखा था च्योरनशेव्स्की ने अपना विश्वास अपने उद्देश्य मिशन तथा भविष्य में दर्शाया है। मार्क्स की तुलना में च्योर्नशेव्स्की का विश्वास तथा आशावाद सादा, सीधा तथा सहज है। तुर्ग्रेनिव भी जो च्योर्नशेव्स्की को कविता समझने के अयोग्य बताता है यह कहने पर विवश है कि "वह (च्र्योंनशेव्स्की) समकालीन, वास्तवकि जीवन की आवश्यकताओं को समझता है।" यह च्योरनशेव्स्की ही था जिसने रूसी क्रान्तिकारियो की 2 पीढ़ियों के नैतिक व्यवहार को प्रभावित किया तथा गढ़ा। लेनिन ने एसे एक महान रूसी समाजवाद का प्रतीक यूटोपिया का रसिया तथा बाल्शविज़्म का अग्रदूत बताया है। लेनिन के आदर्शवादी, क्रान्तिकारी च्योर्नशेव्स्की के नायक नाइकाओं के समान ही संलग्न थे। च्योरनशेव्स्की का एक उपन्यास जो जेल में उसके दृढ़ धारणाओं के लिए आत्मबलिदान के प्रथम वर्ष में लिखा गया था आज भी प्रसिद्ध है।

इन बुद्धिजीवियों ने अपनी क्रान्तिकारी लेखनी से क्रान्ति के लिए जमीन तैयार कर दी थी। परीक्षण प्रणाली का दौर फिर भी समाप्त नहीं हुआ था बीजरोपण कुछ अन्य बुद्धजीवियों द्वारा हुआ प्लेखानव तथा उसके साथियों ने 1883 में जेनेवा में प्रथम मार्कसिस्ट पार्टी बनाई जिसने राजनैतिक स्वतंत्रता को रूसी समाजवाद की सर्व प्रथम तथा आवश्यक मांग बताई। रूस में अराजकता की परम्परायें ऐसी मजबूत थी कि वह राजनैतिक स्वतंत्रता तथा प्रतिनिधि संस्थाओं को शोषण का जरिया समझते थे। फेडोसीव तथा उसके जैसे दूसरे "मार्क्सवादी" क्रान्तिकारी भी इस पर इसी लिए उत्तेजित थे। 1892-1895 के मध्य तक लेनिन भी परगमन तथा संक्रात्मक स्थिति में रहा। लेनिन नें भी फेडोसीव के समान सोशल डेमाक्रेंट बनने की चेष्टा का जिक्र किया है। फिर भी उसने अपने जेकोबिन तरीके भी कुछ रखे। सितम्बर 1894 में रूस में एक मार्क्सवादी विशलेषण पर आधारित पुस्तक "रूस की आर्थिक उन्नति के प्रश्न पर आलोचनात्मक टिप्पणी" स्ट्रव ने लिखी जिसने अभी तक के दृष्टिकोण से हट कर पूंजीवाद के प्रगतिशील तत्वों को सोशलिस्ट दृष्टिकोण से दर्शाया। लेनिन ने इसकी बडी ही कड़ी आलोचनात्मक अपनी कृति "रूसी बूर्ज्वा साहित्य में मार्क्सवाद का प्रतिबिम्ब व चिन्तन" में लिखी परन्तु दोनों ही रूसी नारोदनिकों के विरूद्ध रहे तथा एक समझौता सा लक्ष्य की पूर्ति के लिए उभरा। 1895 से लेनिन की विदेशीयात्रा शरू हुई तथा उन्हें "आन्दोलन" ही उसका मार्ग नजर आया।

1895-97 तक के लेनिन के विचार पाश्चात्य सोशल डेमाक्रेसी वाले ही थे पर अब उसे 1900 से एक नई चिन्तन का द्वार मिला। 1900-1902 में लेनिन द्वारा बाल्शविक थ्यौरी का जन्म तत्पश्चात उभरी कम्युनिस्ट सरकारों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। 20 वी शताब्दी के एक पार्टी वाले इस सिस्टम ने समाजवाद को लोकतन्त्र से पदक कर निरंकुश विशिष्ट वर्ग के

बीच की दरार को निकाल फैंका। लेनिन की थ्यौरी के तत्वों की नीव को मनोवैज्ञानिक तथा विचारात्मक धुधलकों में ढूंढना चाहिए। लेनिन का सम्बन्ध 1879 में शुरू होने वाली आंतकवादी संस्था'' नारोदनाया वोल्या'' (लोकतंत्र का संकल्प तथा अभिप्राय से था) जिसने जार के शासन की निन्दा तथा जार एलेक्जेन्डर द्वितीय की हत्या की थी)। 1880-90 के बीच मत में मार्क्सवाद से बार तात्पर्य है मार्क्स की ''कैपिटल'' में दी गई आर्थिक परिभाषा तथा विशलेषण (ख) सामाजिक सम्बन्ध राजनैतिक संस्थाओं, विचर तथा सभ्यता की अधिरचना उसके आर्थिक आधार से इस दृष्टिकोण से मार्क्सवाद में शाही का प्रश्न ही नही हो सकता था

(ग) सोशल डेमोक्रेसी जिस में श्रमजीवियों को सम्पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता के लिए लड़ना था तथा (घ) मार्क्स तथा ऐग्निल्ज द्वारा रचित धारणाओं के अनुसार क्रान्तिकारी गतिविधियां।

1890 में रोजा लक्सेमवर्ग पोलेण्ड की समाजवादी क्रान्ति से जुडी तथा 1919 के मध्य तक उस का एक महत्वपूर्ण अंग रही थी। द्वितीय इन्टरनेशनल के समय उसकी लेनिन से भी बातचीत हुई। उसने मार्क्सी सिद्धान्तों के बहुत से आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। वह क्रान्ति को आवश्यक मानती थी पर उसमें मानवजाति के लिए अनुकम्पा थी उसने निर्दयता (चाहे वह समाजवाद में क्यों न हो को बुरा कहा है लेनिन ने अपनी पुस्तक ''इम्पीरियलिज्म दा हायस्टस्टेज आफ कैपिटलिज़्म में जिस थ्योरी को बढ़ाया वह रोजा की थ्योरी से मिलती-जुलती है। लेनिन ने जो थ्योरी हिलफरडिंग तथा हाबसन से ली थी वह यह थी कि जो कुछ पूंजीवाद कालोनीज तथा अर्धकालोनी में खोजता था वह मोर्केट् नहीं बल्कि लाभप्रद पूंजी लगाने के साधन स्थल थे। लेनिन तथा बुखारिन ने रोजा की आर्थिक थ्योरी व पुस्तक ''दा अक्यूमलेशन आफ केपिटल'' की आलोचना की है। रोजा ने भी बाल्शविज्म की निन्दा से अपने मनिशाविक सिद्धान्तों से करीबी प्रत्यक्ष कर दी थी। 1903 में जब रूसी सोशल डेमाक्रेटिक पार्टी का विभाजन 2 गुटों बालशविक तथा मीनशविक में हुआ तो रोजा ने लेनिन की अति केन्द्रीता (अल्ट्रा सेन्ट्रलिज़्म) को उसके लिए जिम्मेदार ठहराया। रोजा के विचार में लेनिन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रमजीवियों तथा जर्मनक्रांतियो के हितों को रूसी सरकार की भेंट चढ़ाने पर तत्पर था। रोजा को बालशविज्म तथा जर्मन साम्राज्यवाद की अपवित्र सन्धि दिखाई दे रही थी। मार्क्स तथा एगिल्ज ने फ्रान्स की क्रान्ति की धरोहर को उस के भय के साथ गृहण किया था पर रोजा सोचती थी कि समाजवादी क्रान्ति केवल तभी लाई जा सकती है जब उसको अधिकतर वर्कर लाने के इच्छुक हो।

1899 से लेनिन को अपनी बहन द्वारा भेजा गया ''क्रेडो'' मिला जिसके रचयिता ने सुझाव दिया था कि सोशलिस्ट राजनैतिक लड़ाई को बुरज्वाजी के लिए छोड़ दें तथा स्वयं श्रमजीवियों की भलाई के लिए कार्यान्वित हो। लेनिन को रिवीजनिस्ट्म से भी उलझन थी। क्रप्सकाया (लेनिन की पत्नी) कहती हैं कि 1899 से ही लेनिन चिन्तन में पहले से अधिक डूब गया। उसका वजन घटने लगा तथा नींद कोसों दूर हो गई। अब उसने सोशलिस्ट पार्टी की मजबूती के विषय में सोचा। सोजियाल्दमोके रात के समान एक पत्रिका निकाली जिसे बाद में इस्करा का नाम दिया गया परन्तु, स्टूवे तथा लेनिन ने मतभेदों, पैसे के अभाव तथा सोशलिस्ट

क्रान्तिकारियों द्वारा एक नई पार्टी का आयोजन तथा 1900 में इस्करा बन्द करने जैसी दिक्कतों का सामना किया। लेनिन ने नवम्बर दिसम्बर 1900 में एक निबन्ध "हमारे आन्दोलन में मुख्य मुद्दे" में लिखा कि "किसी एक वर्ग ने इतिहास में कभी प्रभुता प्राप्त नहीं की जबतक कि उसने राजनैतिक नेता, प्रतिनिधि नहीं पैदा किए जो आन्दोलन बढ़ा सके। ऐसे क्रान्तिकारियों की आवश्यकता है जो न केवल अपनी खाली शामें बल्कि समस्त जीवन को क्रान्ति के कार्यों को सौंप सकें।

लेनिन के बुद्धिवादी जीवन में यह एक कठिन समय था अब उसने पहले कृषक वर्ग तत्पश्चात श्रमजीवियों को क्रान्ति के लिये सही सम्पूर्ण शक्ति न समझकर नया बाल्शविक प्लान शुरू किया तथा "श्रमजीवियों की निरंकुश शासन" की बात कर ने लगा। उसने दिसम्बर 1900- 1901 में उदारवादियों से अपना दामन छुड़ाया। इस समय स्ट्रव ने "आटोकैसी तथा जेम्स्तवा (जो सिरगी विटल ने लिखी) छापी तथा उसमें जार से अपील थी कि "जेमस्तवा" की सुरक्षा करें कि उसे क्रान्तिकारी ताश का इक्का न बना सकें। लेनिन को यह क्रान्तिकारियों के हितों के विरूद्ध लगा।

सोशलिस्ट डेमाक्रेसी के प्रतिनिधि तेसेरेतेली, मेरतव, च्योर्नव तथा अवकसेन्टी एवं ऊंचे विचारों के इमानदार अवश्य हों पर वे शक्ति प्रियत तथा उसके अंधा-धुन्ध प्रयोग के लिए भी बैचेन थे। इसीलिए वे अक्टूबर क्रान्ति के 2 सितारों ट्राव्स्की तथा लेनिन जिन्होंने क्रान्ति की सामाजिक शक्तियों को राजनैतिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों से निम्न रखा समझे गये हैं।

चाहे कितनी भी संदिग्धता मार्क्स तथा एंगिल्ज़ की राजनैतिक तथा समाज शास्त्रीय स्तर पर उनके विचारों में हो उन्होंने जो कुछ भी बुद्धिवादी रिक्थ" रूसी शिष्यों के लिए छोड़ी वह महत्वपूर्ण थी। यद्यपि यह पारस्परिक विरोधी विचार लगता है कि मार्क्स एंगिल्ज़ ने रूसी शिष्यों को मार्क्सवाद से पृथक होकर जार क्रूरता के विरूद्ध जूझने को कहा था। परन्तु 40 वर्ष पश्चात् इसी मार्क्सवाद पर लेनिन का समाजवाद फैला। सामन्तवादी रूस में सामाजिक तथा नैतिक मसले राजनैतिक मसलों से अधिक थे। यह रूस की ऐतिहासिक स्थिति थी कि उसने दोनों ओर आगे तथा पीछे देखा। यही एक क्रान्ति थी जो पूर्वायोजित तथा सुविचारित थी। मार्क्सवाद को रूसी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का ही नाम लेनिनवाद है।

21.9 बोध प्रश्न:-

1. रूस की क्रान्ति में बुद्धिजीवियों की भूमिका की विवेचना कीजिए।
2. बुद्धिवाद की ऐतिहासिक रूपरेखा तथा स्त्रोत बताइए।
3. रूसी नारोदनिक से आप क्या जानते हैं?
4. रूस के बुद्धिजीवियों पर एक लेख लिखिए।

21.10 संदर्भ ग्रंथ

1. दि बोलशेविक रिवोल्यूशन (3 वोल्यूम) पैंग्युन बुक्स
2. लेनिन, वी. आई. एम्पीरियलिज़्म दी हाईऐस्ट स्टेज आफ केपिटेलिज़्म (मास्को 1916)

3. डेविड थोम्पसन, यूरोप सिस नेपोलियन
4. केटलबी, हिस्ट्री आफ मोडर्न यूरोप
5. जे. डब्ल्यू स्वैन, बिगनिंग आफ दि टवन्टीयथ सेंचुरी
6. दि मेकिंग आफ मोडर्न एशिया लिनोल कोचन
7. देवेन्द्र सिंह चौहान, यूरोप का इतिहास (1815-1919)
8. शर्मा, मथुरा लाल, यूरोप का इतिहास (1815-1945)
9. वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक विश्व का इतिहास (1871-1948)

इकाई-22
रूस की क्रान्ति एवं इसका प्रभाव

इकाई संरचना

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 क्रान्ति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां

22.2.1 निरंकुश शासक वर्ग

22.2.2 कृषक वर्ग का असन्तोष

22.2.3 औद्योगिकरण एवं श्रमिक असन्तोष

22.2.4 गैर-रूसी जातियों द्वारा विरोध

22.2.5 समाजवादी विचारधारा एवं बोल्शेविक दल

22.2.6 प्रथम विश्व-युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियां

22.3 अनुभागीय सारांश एवं बोध-प्रश्न

22.4 क्रान्ति का सूत्रपात

22.5 ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि एवं रूस का युद्ध से अलग होना।

22.6 बोल्शेविक शासन के विरोधी

22.7 नवीन सरकार का स्वरूप

22.8 अनुभागीय सारांश एवं बोध-प्रश्न

22.9 क्रान्ति का महत्व

22.9.1 रूस में क्रान्ति का प्रभाव

22.9.2 ब्राहय जगत पर क्रान्ति का प्रभाव

22.10 इकाई सारांश

22.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

22.12 अभ्यास कार्य

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि-

(1) 1917 की क्रान्ति के लिये उत्तरदायी परिस्थितियां क्या थी?

(2) प्रथम महा-युद्ध ने किस तरह क्रान्ति का वातावरण बनाया?

(3) क्रान्ति की घटनाओं से आप जानकारी प्राप्त करेंगे?

(4) इस क्रान्ति का रूसी इतिहास पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी देना भी हमारा उद्देश्य है एवं

(5) विश्व इतिहास को इस क्रान्ति ने किस तरह प्रभावित किया एवं उसके क्या परिणाम हुए इस बात की जानकारी देना भी हमारा उद्देश्य है।

22.1 प्रस्तावना:

बीसवीं सदी के विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक रूस की राज्य क्रान्ति है। इस सदी के पहले दशक में (1905 ई.) की हुई क्रान्ति के बाद वहां प्रजातांत्रिक व्यवस्था से सम्बन्धित प्रयोग शुरू हुये जबकि दूसरे दशक में (1917 ई) हुई क्रान्ति से वहां साम्यवादी शासन व्यवस्था का जन्म हुआ। साम्यवाद एक नई सभ्यता, नवीन संस्कृति एवं नवीन समाज का पक्षपाती है।

शताब्दियों से रूसी इतिहास भ्रष्ट, अत्याचारी, निरंकुश, जारशाही के उत्पीडन और शोषण का इतिहास रहा है। 1789 ई. की फ्रांसिसी क्रान्ति ने राजमुकुट को उतार फैंका था और वहां समानता स्वतंत्रता की आवाज बुलन्द की जा रही थी। यूरोप के ऐसे वातावरण में रूसियों ने जारशाही के आतंक एवं अत्याचार पूर्ण शासन के विरूद्ध आवाज उठाई। 1905 ई. में रूस में प्रथम राज्यक्रान्ति हुई। जार के अत्याचार पूर्णशासन, उनके देवी अधिकार, निरंकुश शासन, जारीना का प्रभाव, भ्रष्ट नौकरशाही, किसानों की दयनीय स्थिति एवं बुद्धिजीवी वर्ग में चेतना, क्रान्तिकारी संस्थायें अराजकतावादी विचारधारा इत्यादि इस क्रान्ति के प्रमुख कारण थे।

1904 ई. में जापान का रूस पर आक्रमण होना और रूसी फौजों की हार, जनता द्वारा शासक वर्ग का विरोध, जन असंतोष एवं मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति ने क्रान्ति को आवश्यक बना दिया। किसानों एवं मजदूरों के साथ ही छात्रों का आन्दोलन भी जोर पकड़ता जा रहा था। देश को क्रान्ति की ज्वाला में गिरने से बचाने के लिए स्वायत्त संस्थाओं के उदारवादी नेताओं ने शासन के समक्ष मांगें रखी जिनको जार ने न मानकर कुछ प्रशासकीय सुधारों का आश्वासन दिया। ऐसे समय पर ही हड़ताली मजदूरों ने अपनी मांगो के समर्थन में जार को एक ज्ञापन देना चाहा लेकिन जार ने इन निहत्थे एवं अनुशासन बद्ध लोगों पर गोलियों की बोछार करवा दी जो "खूनी रविवार" के नाम से जाना जाता है। यहीं से क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। मजदूरों के साथ कृषकों, रेलवे कर्मचारियों ने भी विद्रोह कर दिया। जनता के आक्रोश की बाढ़ को जार सह नहीं सका। मजबूर होकर उसने जनता को मूल अधिकार एवं स्वतंत्रता देने का निर्णय लिया एवं विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित एवं विधायी शक्ति प्राप्त ड्यूमा स्थापित करने का वचन दिया। जो कि इस क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम था। इसके अलावा कृषि के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुऐ डयूमा ने शिक्षा के प्रसार की दिशा में उल्लेखनीय कदम उठाये। लेकिन यह विदित होना चाहिये कि 1905 की क्रान्ति से जनता की पूर्ण स्वतंत्रता की इच्छा पूरी न हो सकी। लेकिन सुधारों का युग शुरू हो गया था। जनता ने अपने अधिकारों हेतु सतत प्रयत्न किये और यहां यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण न होगा कि इस क्रान्ति ने 1917 की साम्यवादी क्रान्ति का मार्ग-प्रशस्त किया और उसकी सफलता में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

1917 ई. में रूस में दो क्रान्तियां हुई पहली मार्च में दूसरी नवम्बर में। लिप्सन का कहना है कि क्रान्ति तो एक ही थी किन्तु इसके दो अध्याय थे। 1 मार्च, 1917 ई. की क्रान्ति ने जारों की निरंकुशता का अन्त कर दिया। नवम्बर की बोलशेविक क्रान्ति का दूसरा अध्याय थी जिसके फलस्वरूप मजदूर जनतंत्र का उदय हुआ। 1905 में रूस में डयूमा (संसद) अवश्य

बन गई थी लेकिन सम्राट एवं उसके सलाहकार जन इच्छा की अवहेलना करते थे जार के अन्त: पुर पर रासपुटिन नामक एक साधु का अत्यन्त प्रभाव था। सम्राट भी उसके हाथ कठपुतली मात्र था। 20 वीं सदी में अठारह करोड़ जनसंख्या के विशाल देश में ऐसा शासन एक लज्जा की बात थी।

यह कहना असंभव है कि यदि प्रथम विश्व-युद्ध न होता तो पता नहीं कितने समय और जारशाही का शासन रूप में चलता रहता। 1905 के बाद निरन्तर इसकी गिरती हुई सैनिक शक्ति ने इस के जीवन में कटौती कर दी थी। औधोगिक, कृषि एवं आर्थिक दृष्टि से रूस के लिए विश्व-युद्ध में अधिक समय तक लड़ना असंभव था। ऐसी विकट परिस्थितियों में ही रूस में क्रान्ति हो गई जहां पर बोल्शेविको ने जर्मनी के साथ संधि करके अपने को युद्ध से अलग कर लिया।

प्रथम विश्व-युद्ध के (1914-1918) के बीच में ही रूस में क्रान्ति की शुरूआत हो गई। हांलाकि इस युद्ध में रूस की बिगड़ती हुई सैनिक स्थिति के कारण ही यह क्रान्ति जल्दी हुई। लेकिन युद्ध ने उस स्थिति को अधिक तेजी के साथ उभार दिया। इससे पहले भी सैनिक हार के परिणामस्वरूप जार को क्रिमिया युद्ध एवं रूसी जापान युद्ध में हारने के बाद जोरदार आन्तरिक विरोध का सामना करना पड़ा था और विरोधियों को संतुष्ट करने के लिए सुधारों का कार्यकम भी तैयार करना पड़ा। 1905 ई. से ही इस महान क्रान्ति के लक्ष्य स्पष्ट हो चुके थे लेकिन जार ने उसके बाद भी अपने निरंकुश शासन के अन्तर्गत पनपते हुए भ्रष्टाचार एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

22.2 क्रान्ति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां:

हम यहां उन परिस्थितियों का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं जिन्होंने रूसी राज्य क्रांति के लिए मैदान तैयार किया था।

22.2.1 निरंकुश शासक वर्ग-

जार शासक स्वेच्छाचारी शासन एवं दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे और उसी आधार पर शासन चलाना चाहते थे। इस निरंकुश, कठोर एवं दमनकारी शासन में जन सहयोग एवं उनकी भावनाओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। हालांकि 1905 की क्रान्ति के फलस्वरूप जार ने सुधारवादियों को सन्तुष्ट करने के लिये ड्यूमा का निर्वाचन कराने की घोषणा की थी, लेकिन जार ने उसे प्रतिनिधित्व संस्था के वास्तविक अधिकारों से वंचित रख स्टोलीपिन की सहायता से पुन: प्रतिकियावादी शासन स्थापित कर दिया।

जार के पास अभी भी असीम अधिकार थे। ड्यूमा के अधिवेशन बुलाने स्थगित करने या भंग करने के अधिकार इसी में निहित थे। मंत्रीगण उसी के प्रति उत्तरदायी थे। ऊपरी सदन नामक संस्था का भी ड्यूमा पर नियंत्रण था। जिसके अधिकार ड्यूमा के ही समान थे। रोमानोव वंश के शासकों ने वहां के नागरिकों की हमेशा भाषण, लेखन, एव सभा सगंठित करने के अधिकारों से वंचित रखा था। इसके अलावा समाचार-पत्रों, शिक्षण संस्थाओं पर कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे। जनहितों की सर्वथा उपेक्षा करने वाले शासन में अयोग्य एवं भ्रष्ट नौकरशाही का

बोलबाला था। ऐसी दमनकारी एवं शोषक व्यवस्था के कारण जार का निरंकुश शासन असहनीय हो गया। उधर जनता के प्रबुद्ध नेता सुधारों की मांग करने लगे जहां की जनता भी स्वंय अपने राजनीतिक अधिकारों से परिचित हो गयी थी। इसलिए वे अब चाहते थे कि रूस में जारशाही का अन्त हो और जनतंत्रीय शासन प्रणाली की स्थापना हो।

22.2.2 कृषक वर्ग का असंतोष:

18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप वहां पर कृषि उत्पादन के अतिरिक्त नये. प्रकार के वृहत उधोगों में काम करने एवं यातायात के नवीन साधनों का प्रयोग शुरू हो गया था। लेकिन 1880 ई. तक रूस एक कृषि प्रधान देश होने के बावजूद भी इस क्षेत्र में पिछड़ा ही रहा। कृषकों की अवस्था अत्यन्त दयनीय थी जिसके कारण कृषि गंभीर संकटों में फंसी रहती थी। 1861 ई. में कृषि दासो की मुक्ति की व्यवस्था की गई थी, जिसके अनशेषो को गावों से मिटाया नहीं जा सका। जमीदारों को दिये जाने वाले करों के कारण कृषकों की गरीबी की रेखा निम्नतर स्तर को पार कर गई थी। इस स्थिति से किसानों में शासकों के प्रति असंतोष एवं विरोध बढ़ता गया, उन्होंने करों में कमी एवं विशेष अधिकारों की समाप्ति की मांग की। मांगों की अवहेलना होने पर वे अधिक उग्र हो गये। उनके असन्तोष का लाभ उठाकर क्रान्तिकारी समाजवादी दल ने उन्हें शासन एवं जमीदारों के विरूद्ध भड़काया।

स्वोलिपिन ने कृषि क्षेत्र में सुधारों की योजना बनाई जिसके कारण किसानों को गांव छोड़ने एवं जमीन पर निजी स्वामित्व के अधिकार प्राप्त हो गये। इन कानूनों से कृषकों को कुछ लाभ तो मिला लेकिन भूमिहीन कृषिकों की समस्या का समाधान नहीं हो सका। और किसानों की दयनीय स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इन सुधारों का एक लाभ यह हुआ कि गावों में वर्ग विभाजन की प्रक्रिया तेज हो गई। कुल को एवं गरीब कृषकों के बीच खाई चौडी होने के साथ-साथ किसानों में क्रान्तिकारी भावना का विकास होने लगा। युद्ध के धातक प्रभावों के कारण किसानों एवं जमीदारों में संघर्ष उग्र रूप धारण करने लगा। युद्धकालीन परिस्थितियों में किसानों का क्रान्तिकारी संघर्ष व्यापक हो गया और वे युद्ध की समाप्ति, जारशाही के अन्त के साथ-साथ भूमि के राष्ट्रीय एवं जागीरों को खत्म करने की मांग करने लगे।

22.2.3 औधोगिकरण एवं श्रमिक असन्तोष:

जार अलेक्लेण्डर (1) के शासनकाल में रूस में तीव्र गति से औधोगिक विकास हुआ। विभिन्न उधोगों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी। औद्योगिक विकास ने आर्थिक सम्पन्नता के स्थान पर आर्थिक असन्तोष को बढावा दिया। भारी उधोगों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ उनकी उत्पादन क्षमता कम होने लगी। कृषि की दयनीय एवं अलाभकारी हालत से हजारों लोग मजदूरी की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने लगे जिसके कारण उधोगों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या तीव्र गति से बढती रही। ऐसे हालात मे उद्योगपतियों ने श्रमिको का शोषण करना शुरू किया, उन्हें कम से कम वेतन पर अधिक से अधिक काम करने पर विवश किया। उनके रहने की बस्तियां गंदी एवं तंग कोठरियों के समान

थी। पारिश्रमिक इतना कम था कि उन्हें जीवन-यापन करना मुश्किल हो जाता था। इसके अलावा वास्तविक मजदूरी में भी ह्रास होता जा रहा था। बडे-बडे कारखानों के समान बहुतायात एवं सेन्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, बाकू और डोनेन्ट में मजदूरों के सकेन्द्रण ने उन्हें संगठित होने के अवसर दिया। शासन की नीति उधोगपतियों के पक्ष एवं मजदूरों के विपक्ष में होने के कारण शासन द्वारा पारित कुछ श्रमिक कानून भी इनकी स्थिति में विशेष अन्तर नही ला सके। मजदूरों के असन्तोष का लाभ उठाकर क्रांतिकारी समाजवादी दल ने उन्हें समाजवादी सिद्धान्तों से अवगत कराकर पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ भड़काया। श्रमिकों ने अपने अधिकारों हेतु संघर्ष करने का बीडा उठाया। उनके सकेन्द्रण ने उनमें संगठन की शक्ति का विकास करने एवं उपने राजनीतिक प्रभाव को बढाने का अवसर मिला जिसके कारण की क्रांति में सर्वहारा वर्ग की प्रधानता रही। मजदूरों की शक्ति का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होने 1905 में ही "श्रमिकों" की सोवियत" नाम से अपनी पृथक सरकार बना ली। मजदूरों के स्वास्थ्य एवं आकस्मिक दुर्घटना बीमा योजना भी उनके असन्तोष को कम नहीं कर सकी। समाजवादी दलों के प्रभाव से श्रमिक आन्दोलन का स्वरूप अब मूलत: राजनीतिक हो गया था वे चाहते थे कि जारशाही की निरंकुशता एवं पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये एवं उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग का शासन लागू किया जाये।

22.2.4 गैर-रूसी जातियों द्वारा विरोध -

जारशाही शासक किसी प्रान्त या सूबे में षडयंत्रकारी ताकतों से बडी निर्दयता का सलूक करती थी। 1863 ई० में पौलेण्ड के विद्रोह का निर्ममता से दमन करने से वहां की जनता आतंकित हो गई थी जिसके फलस्वरूप वहां समाजवादी विचारधारा एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने लगा। पोल लोगों के अलावा शासन में यहुदियों एवं अभिनियमों का कठोरता से दमन करने के कारण उनमें गहरा असन्तोष व्याप्त हो गया। इसी तरह से 19 वी सदी के अन्त में मध्य एशिया में खिरगीज व उजबेग जातियों ने जारों की निरकुंशता के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा दिया जार्जिया, पोलेण्ड एवं बाल्टिक प्रान्तों में 1905 ई० में बडे पैमाने पर विद्रोह हुये। जारशाही शासन ने विशेष रूप से अन्तिम दो जारों ने गैर-रूसी जातियों के प्रति जो अमानुषिक अत्याचार किये। और उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई उसके नतीजे में उन लोगों का विद्रोही बनना एवं जारशाही को जड़ से उखाड फैकने की इच्छा रखना अस्वाभाविक नही था।

22.2.5 समाजवादी विचारधारा एवं बोल्शेविक दल -

जिस प्रकार फ्रांस में राज्य क्रांति का वातावरण तैयार करने एवं जनता में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करने का श्रेय मुख्य रूप से वहां के बुद्धिजीवी वर्ग को जाता है ठीक उसी तरह से रूसी जनता भी कुछ मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के प्रयत्नों से ही अपने अधिकार के प्रति चेतन शील हुई। इस वर्ग के लोगों ने सर्वहारा एवं किसान वर्ग की दयनीय अवस्था से प्रभावित होकर 1860 ई० के बाद समाजवादी विचारधारा का प्रचार एक आन्दोलन के रूप में शुरू किया। उन्होंने समाजवाद के आधार पर ही इन दो वर्गो की हालत सुधारने की

दिशा में प्रयत्न किये। हजैन व चर्नीशेवेर की इस आंदोलन के प्रणेता थे। इस आन्दोलन के समर्थको को "पोपुलिस्ट" कहा जाता था। वे इस बात के पक्षपाती थे कि कृषकों को भू-स्वामी मान लिया जाये एवं ग्राम सभाओं के माध्यम से भूमि वितरण हो। कुछ "पोपुलिस्ट" लोगों ने आतंकवादी उपायों से अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करने की कोशिश की और इसी कार्यक्रम ने निहित उन्होंने जार अलेक्जेण्डर 11 की हत्या कर दी। कुछ समय बाद समाजवादी दल-क्रांतिकारी समाजवादी एवं सोशलडेमोक्रेटिक दल दो भागो में विभाजित हो गया। बुद्धिजीवी क्रांतिकारी समाजवादी दल को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे। यह दल आंतकवाद में भी विश्वास रखता था। इस दल का मुख्य ध्येय किसानों द्वारा क्रांति लाना था जबकि सोशल डेमोक्रेटिक दल सर्वहारा वर्ग को क्रांति की मुख्य चालन शक्ति मानता था। यह दल जारशाही एवं पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट कर बुर्जआ जनतंत्र की स्थापना करना चाहता था। उसके बाद सर्वहारा का प्रधान्य चाहता था। यह दल भी 1903 मेन्शेविक एवं बोल्शेविक नामक दो भागों में विभाजित हो गया। ये शेविक दल मजदूरों के साथ साथ अन्य वर्गो के सहयोग से जनतंत्र की स्थापना करना चाहता था बोल्शेविक दल लेनिन के नेतृत्व में केन्द्रीय संगठन एवं कठोर अनुशासन द्वारा सर्वहारा वर्ग के अशिनायक-तंत्र का पक्षपाती थी जारशाही ने समाजवादी विचारो को रोकने का भरसक प्रयत्न किया तथापि औद्योगिक विकास एवं त्रुटिपुर्ण भू-व्यवस्था से उत्पन्न मजदूरों एवं कृषकों के असन्तोष ने समाजवादी विचारधारा का खूब प्रसार किया।

22.2.6 प्रथम महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियां :

1914 में प्रथम महायुद्ध छिडा जिनमें रूस ने बोल्शेविको की सहमति के बिना ही प्रवेश कर लिया। सरकार की इस कार्यवाही से जनता बिल्कुल खिलाफ थी। क्योंकि रूसी जारशाही का पतन चाहते थे एवं रूस इस युद्ध के लिए पूर्णत: तैयार भी नहीं था। जैसाकि हम देखते हैं कि 1904-5 के जापान आक्रमण में रूसी की भयंकर पराजय एवं हानि हुई थी। 10 वर्षो बाद ही देश का युद्ध में झोंक देना हानिकारक था। युद्ध से राज्य की आर्थिक अवस्था बिगडती गई कृषकों को सेना में भर्ती करने के कारण कृषि उत्पादन में बहुत कमी आई। ऐसे माहौल में मजदूरों एवं कृषकों का असन्तोष बढ़ना स्वाभाविक था युद्ध क्षेत्र से भेजे गये निराश एवं कुछ सैनिको ने क्रांतिकारी भावना बढ़ाने में उनको सम्पूर्ण सहयोग दिया।

युद्ध के प्रारंम्भ में ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गई थी कि क्रांति का होना स्वाभाविक था लेकिन इस को रोका जा सकता था। यदि शासन संचालन किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में होता। लेकिन जार निकोल्स II अयोग्य एवं अदूरदर्शी था। ड्यूमा का अन्त करके एवं प्रतिक्रियावादी नीति के समर्थक लोगों को प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री बनाया जिन्होनें अपनी सम्पूर्ण शक्ति उदारवादियों एवं क्रांति के समर्थको के दमन में लगा दी। इतना ही नही 1916 तक जार एवं जरीना पर रासपुटिन का प्रभाव इतना अधिक था कि वह अप्रत्यक्ष रूप से शासन संचालन करता था। जिसके कारण जनता में असंतोष एवं शासन में अराजकता उत्पन्न होने लगी। उसकी हत्या (18 दिस. 1916) के बाद भी जार ने अपनी नीति में कोई परिवर्तन नही किया। एक तरफ तो रूसी फौजो की अपमान जनक हार से जनता क्षुब्द्ध थी तो दूसरी तरफ उपभोग की वस्तुओं में कमी से भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसके लिए सरकार को उत्तरदायी ठहराया। सैनिक

भी लगातार पराज्यों की तरफ अग्रसर थे। उनमें असंतोष व्याप्त था, जिसने क्रांति के दिनों में सरकार के आदेशों की स्पष्ट अवहेलना करते हुए क्रांतिकारियो का साथ दिया।

22.3 अनुभागीय सांराश एवं बोध प्रश्न -

विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में रूसी राज्य क्रांति एक महत्वपुर्ण स्थान रखती है। 19 वी सदी में यूरोपीय देशों में प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना होने पर वहां स्वतंत्रता समानता की आवाज बुलन्द की जा रही थी जबकि रूस में भ्रष्ट, अत्याचारी निरंकुश, जारशाही के उत्पीडन एवं शोषण का वातावरण बना हुआ था। 1905 में रूसियों ने अपनी इस अवस्था से मुक्ति के लिए फदम उठाया था, जिसके कारण कुछ समय के लिए आंतक एवं निरकुंश शासन के स्थान पर सुधारवादी एवं जनतांत्रिक व्यवस्था लागू की गई थी, लेकिन अल्प समय के बाद ही वहां फिर प्रतिक्रियावादी शासन लागू हो गया एवं जन अधिकारों कों समाप्त करके ड्यूमा जैसी विधायी संस्था को भी भंग कर दिया। लेकिन रूसी लोग अपनी वर्तमान अवस्था से छुटकारा पाने एवं अधिकार प्राप्ति हेतु 1905 के बाद भी प्रयत्न करते रहे इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप वे 1917 में इस पुरातन व्यवस्थाओं को जन्म दिया। 1917 की क्रांति के पीछे शासक वर्ग का निरंकुश एवं आतंक पूर्णशासन, जनइच्छाओं की अवहेलना, कृषकों का भूमिहीन होना, कृषि की अवनत अवस्था दोषपूर्ण कृषि सुधार योजनाएं, औद्योगिकरण का विकास, एवं उसके फलस्वरूप श्रमिकों की दयनीयस्थिति, असंतोष, अलाभकारी, श्रमिक कानून, गैर रूसी जातियों द्वारा जारशाही की आतंकपूर्ण नीति का विरोध, उनमें समाजवादी व राष्ट्रीयता की भावना का विकास, उनमे निहीत विद्रोहात्मक प्रवृत्तियां एवं विशेष रूप से समाजवादी विचारधारा का विकास व बोल्शेविक दल के प्रयास इत्यादि महत्वपूर्णतथ्य थे, जिन्होनें इस परिवर्तन को अवश्यम्भावी बना दिया। लेकिन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध का होना एवं उसमें रूसी फौजों की हार ने इस क्रांति का समय से पहले ही विस्फोट कर दिया। जिसके फलस्वरूप पुरातन व्यवस्था के अवशेषों पर नवीन शासन व्यवस्था एवं ढाँचा तैयार हुआ।

22.4 क्रांति का सूत्रपात :-

सम्राज्यवादी युद्ध के विरूद्ध शांति का सार्वजनिक आंदोलन, जमींदारों के प्रभुत्व के विरूद्ध शोषण से युक्त होने एवं जमीनों के लिए किसानों का आंदोलन, गैर रूसी जातियों को स्वतंत्रता और राष्ट्रीय उत्पादन का आन्दोलन एवं समाज की मुख्य पथ प्रदर्शक शक्ति सर्वहारा वर्ग का समाजवाद के लिए आन्दोलन इत्यादि धराओं में देश प्रवाहित होकर द्रुतगाति से क्रांतिकारी आन्दोलन की और अग्रसर हो रहा था। इन परिस्थितियों में अप्रत्याशित रूप से क्रांति हो गई जिसकी किसी ने भी कल्पना नहीं की थी जिसका तात्कालिक कारण पेट्रोग्राड में 8 मार्च, 1917 में हुई मजदूरो की हड़ताल थी, अत्याचारी शासन का नाश हो, के नारे बुलन्द कर रहे थे। इन उपद्रवकारियों का दमन करने हेतु जार ने सेना भेजी जिसने ऐसा करने से मना कर दिया। मजदूरों एवं विद्रोही सैनिकों ने मिलकर "सैनिकों एवं मजदूरों के प्रतिनिनिधयो की क्रांतिकारी सोवियत" बनाई जिसने शासन के वास्तविक अधिकार हस्तगत कर लिये। 14 मार्च को सोवियत व ड्युमा के सदस्यों ने मिलकर एक "अस्थाई सरकार" प्रिन्स ल्वाव के नेत्रत्व में गठित की।

जिसमें जार को सिंहासन छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। इस तरह से एक ही झटके में रोमानोववंश धराशाही हो गया। "अस्थाई सरकार" को सर्वसाधारण वर्ग का समर्थन नहीं था। इसलिए उसने स्थिति सुदृढ करने के लिए जनता को धर्म, भाषा, प्रेस एवं सभा की स्वतंत्रता देने के साथ-साथ राजनीतिक बन्दियों को भी मुक्त कर दिया। यहूदियों के विरूद्ध लगाये गये कानून एवं चर्च के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये, पौलेण्ड को स्वायत्त शासन का आश्वासन एवं फिनलैण्ड के वैध अधिकारों को मान्यता दे दी गई। इन कार्यो के बावजूद भी अस्थाई सरकार एवं मजदूरी एवं सैनिको की सोवियत के बीच मतभेद हो गया। अस्थाई सरकार युद्ध के संचालन का भार उठाना एवं मित्र राष्ट्रो को दिये गये वचनों को पुरा करना चाहती थी जिसका सोवियत ने विरोध किया। अस्थाई सरकार जनता की तीन मांगों शांती, जमीन, और रोटी-को पूर्ण करने में पूर्णात: असमर्थ थी। जिसके कारण लोगों में असंतोष बढ़ता गया।

जून, 1916 में अखिल रूसी सोवियत कांग्रेस का अधिवेशन प्रेट्रोग्राइड सोवियत ने किया। जिसने 300 सदस्यों की "अखिल रूसी सोवियत कायकारिणी समिति" गठित की। जिसमें मेन्शेविक एवं बोल्शेविक दोनो ही दलों के प्रतिनिधि थे। जुलाई में पेट्रोग्राड के मजदूरों ने अपने प्रदर्शन में सरकार विरोधी एवं सोवियत समर्थन में प्रदर्शन किया। इसी माह में एक बडा विद्रोह सरकार के विरूद्ध हुआ। जिसे सेना की मदद से दबा दिया गया। सरकार ने इस आंदोलन के पीछे बोल्शेविकों का हाथ मान कर उनके नेताओं को कैद करने लगी जिसके कारण लेनिन व अन्य लोगों को रूस छोडकर भागना पड़ा। ऐसी हालत में सरकार का पुर्नगठन किया गया एवं ल्वाव के स्थान पर केरेन्सकी प्रधानमंत्री बना जिसने राष्ट्र की स्थिति पर विचार हेतु एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया जिसमें समाजवादियों के आपसी मतभेदों के कारण कोई निर्णय नही हो सका। इसी समय सेनापति कार्नालाव ने सेना का प्रधान्य स्थापित करने हेतु विद्रोह कर दिया जिसको केरेन्सकी ने बोल्शेविको की सहायता से दबा दिया। इसलिए उसने बोल्शेविक पार्टी से प्रतिबन्ध हटाकर उसके नेताओं को कैद से मुक्त कर दिया एवं लेनिन फिर सक्रिय हो गया।

लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक दल की कार्यकारिणी ने सशस्त्र क्रांति द्वारा सत्ता हस्तगत करने की योजना को क्रियान्वित करने हेतु "पोलिवब्यूरो" को नियुक्त किया गया। बोल्शेविक नेता क्रांति की योजना को 25 अक्तूबर को होने वाले "अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन" से पहले कार्यान्वित करना चाहते थे। 5 नवम्बर को केरेन्सकी ने बोल्शेविक नेताओं को बन्दी बनाने के आदेश जारी किये। 6-7 नवम्बर की रात्रि को "लाल रक्षकों" एवं नियमित सैनिक टुकड़ियों ने पेट्रोग्राड के रेलवे स्टेशन, पुलिस, स्टेशन सरकारी बैंक, पोस्टऑफिस, बिजली घर आदि प्रमुख स्थानों पर कब्जा कर लिया। केरेन्सकी राजघानी छोडकर भाग गया एवं उसके मंत्री मण्डल के सदस्य बन्दी बना लिये गये। पेट्रोग्राड पर इस तरह से बिना रक्त बहाये बोल्शेविकों ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। उसी दिन अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन के अधिवेशन में लेनिन ने दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पेश किये। प्रथम प्रस्ताव में युद्धरत रूस और उसकी सरकार को सम्मेलनों एवं क्षतिपूर्तियों के बिना एक न्याय पूर्ण और लोकतंत्रीय शान्ति के लिए वार्ता प्रारंम्भ करने को कहा गया। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार जमीदारों की जमीनें बिना मुआवजे के हड़प लेने का निर्णय किया गया। इस तरीके से बोल्शेविको ने एक ही रात में न

केवल एक शासन का गठन करने में सफलता पाई बल्कि महत्वपूर्ण समस्याओं पर क्रांतिकारी नीतियों की घोषणा करने में भी सफलता प्राप्त की।

8 नवम्बर, 1917 ई० को लेनिन की अध्यक्षता में नई सरकार का प्रथम मंत्रीमण्डल बनाया गया जिसमें द्राहस्की, स्टालिन राइकॉव इत्यादि को शामिल किया गया। केन्द्रीय शक्तियों से संधि करना राजनैतिक, समाजिक एवं आर्थिक अवस्था में परिवर्तन लाना, ऐसी व्यवस्था करना जिससे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र उस समय तक स्थाई रहे जबकि देश की सम्पूर्ण जनता साम्यवादी शासन में भाग लेने योग्य न हो जाये। एवं सर्वहारा वर्ग की क्रांति को विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान करना इत्यादि इस नई सरकार के कार्यक्रम थे।

22.5 ब्रेस्टलियेवस्क की संधि एवं रूस का युद्ध से अलग होना-

बोल्शेविक दल ने सत्ता ग्रहण करने के बाद युद्धरत् राष्ट्रो से युद्ध बन्द करने की अपील की जिसका उन पर कोई असर न होने के कारण रूस ने प्रत्येक राष्ट्र के साथ पृथक-पृथक संधि करने का निर्णय लिया। दिसम्बर 1917 में रूस ने संधिवार्ता की एवं 3 मार्च, 1918 को जर्मनी एवं उसके स राज्यों के साथ संधि करके युद्ध का अन्त कर देने का निर्णय लेकर बोल्शेविक नेताओं ने रूसी इतिहास में महत्वपूर्ण कार्य किया। संधि की शर्तो के आधार पर रूस को 5000 हजार वर्ग मील का क्षेत्र एवं करीब 330 लाख लोगों पर से अपना अधिकार छोड़ना पड़ा। इतने सुविस्तृत प्रदेश एवं विशाल जनंसख्या के हाथ से निकल जाने के कारण रूस की अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ा लेकिन रूस की बोल्शेविक सरकार यह भलीभांति जानती थी कि जर्मनी एवं उसके साथियों के खिलाफ युद्ध जारी रखते हुऐ उनके लिए यह संभव नहीं होगा कि वे रूस में सर्वहारा वर्ग के शासन को स्थापित कर सके या नई साम्यवादी व्यवस्था को कायम रख सके।

22.6 बोल्शेविक शासन के विरोधी-

बोल्शेविक शासन की स्थापना तो बड़ी सुगमता से हो गई थी लेकिन उसके विरोधियो की कमी नही थी। नवम्बर 1917 से 1920 के शुरू तक लगभग तीन वर्ष तक बोल्शेविक को अपने तीन मुख्य विरोधियों का सामना करना पड़ा जिनमे रोमानोव वंश के समर्थक, लोकतंत्र वादी, जो फ्रांस अमेरिका के समान प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था चाहते थे एवं तीसरे वे लोग थे जो हालांकि साम्यवादी विचारधारा के समर्थक मे, लेकिन वे क्रांतिकारी उपायों से समाज के आर्थिक संगठन को एकदम बदल देना मुनासिब नहीं समझते थे।

बोल्शेविकों के इन विरोधियो को मित्र राष्ट्रों का पूर्ण सहयोग एवं समर्थन प्राप्त था। मित्र राष्ट्र रूस मे 'मध्यवर्गीय सरकार पुन: स्थापित करना चाहते थे जिसमें जर्मनी के विरूद्ध पूर्वी मोर्चो पुन: खोला जा सके। मित्र राज्यों की सेनोओं ने प्रत्येक क्षेत्र में बोलोविक विरोधी दलों के सहयोग से प्रति क्रांतिवादी (श्वेत) सरकारें स्थापित की। बोल्शेविको की ''लाल सेना'' एवं विरोधियों की श्वेत सेना में भंयकर युद्ध हुये। ऐसा लगता था कि बोल्शेविक सरकार का पतन हो जायेगा क्योंकि उसकी शक्ति मास्को एवं पेट्रोग्राड तक ही सीमित रह गई थी लेकिन बोल्शेविक दल की सरकार ने अपने विरोधयो को मैदान से मार भगाया एवं विजयश्री हासिल की।

विरोधियों का सामना करते हुये रूसियों को बंदी जार एवं उसके परिजनों का ध्यान आया जिन्होंने पेट्रोग्राड को असुरक्षित मानकर उन्हें यूराल प्रदेश भेज दिया लेकिन जब विरोधी सेनाएं वहां पर भी पहुँचने लगी तो क्रांतिकारियो ने 16 जुलाई, 1918 को जार एवं जारीना को गोली से उड़ा दिया।

"लाल सेना" की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मित्र राष्ट्रों ने रूस में सक्रिय सैनिक हस्तक्षेप की नीति बदल दी और उन्होनें वहाँ पर युद्धरत अपनी सेनाओं को वापिस बुला लिया। अक्तूबर 1920 तक फिनलैण्ड, पौलेण्ड लेटविया, एस्टोनिया, लिथुआनियॉ ने बोल्शेविक सरकार से संधिया करके संघर्ष को ही खत्म कर दिया। इस तरह से क्रांति के विरोधियों एवं विदेशी राज्यों के हस्तक्षेप से उत्पन्न संकट समाप्त हो गया। 1921 तक न केवल रूस में (आंतरिक शान्ति स्थापित हो गई, बल्कि फ्रांस, पौलेण्ड, एवं अन्यदेशों ने यह भलीभांति महसूस- कर लिया कि बोल्शेविकों की शाक्ति को कुचलना असंभव है। रूस इस संकट से अपनी रक्षा करने में सफल रहा क्योंकि एक बात तो यह थी कि विदेशी सेनाओं के प्रवेश से रूसियों की सुश्प्तावस्था खत्म होकर उनमें राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। दूसरी बात यह भी कि कृषकों ने जिन्हें बोल्शेविक सरकार ने भूमि वितरित की थी शासन को पूर्णत: सहयोग. दिया। उन्हें भय यह था कि यदि बोल्शेविक परास्त हो गये, तो जमीदार पुन: उनकी जमीनों पर अधिकार कर लेंगे। इस संघर्ष काल में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो जाने से समस्त मजदूरों ने भी बोल्शेविको का साथ दिया था।

22.7 नवीन सरकार का स्वरूप :

नवम्बर 1917 की क्रांति से रूस में जिस बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई थी उसका स्वरूप एवं संगठन संसार के इतिहास में बिल्कुल नया था।

अपनी स्थापना के चौथे दिन बोल्शेविक सरकार ने एक आज्ञाप्ति जारी करके आठ (8) घंटे का कार्यदिवस निर्धारित कर दिया एवं मजदूरों व कर्मचारियों के लिए नि:शुल्क राज्य बेरोजगारी तथा स्वास्थ्य बीमा प्रणाली भी लागू की गई 15 नवम्बर को सोवियत सरकार ने रूसी जनता के अधिकारों का घोषणापत्र प्रकाशित किया जिसमें जातीय उत्पीडन के अन्त, सभी जातियों की समानता, सर्वसत्ता, आत्मनिर्णय का अधिकार एवं सभी जातिय व धार्मिक विशेषाधिकारों व प्रतिबन्धों के उन्मूलन की उद्घोषणा की गई थी। इसी घोषणा पत्र अमल करते हुऐ दिसम्बर 1917 में सरकार ने फिनलैण्ड की स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान कर दी।

अप्रैल, 1918 में रूस का नवीन संविधान निर्मित करने हेतु एक आयोग गठित किया गया जिसके सदस्य स्टालिन बुखारिन, सवर्दलाव, पोंक्रवास्की आदि थे जिसने तीन जुलाई को संविधान तैयार करके "सेन्ट्रल कमेटी" के समक्ष प्रस्तुत किया। इस संविधान के आधार पर "रसियन सोशलिस्ट फेडरल सोवियत रिपब्लिक" की स्थापना हुई एवं उसकी राजधानी पेट्रोग्राड के स्थान मास्कों को बनाया गया। इस संविधान का मूलसिद्धान्त यह था कि समस्त शक्ति (सत्ता) गावों व शहरों की सोवियतों में शामिल श्रमिकों व किसानों में निहीत है। सर्वोच्च सत्ता सोवियतों की अखिल रूसी कांग्रेस के हाथ में थी। कार्य की सुगमता के लिए सेन्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी" को गण्तंत्र की प्रशासनिक विधामी एवं नियंत्रक, संस्था बनाया गया इसी

कमेटी के अन्दर 40 सदस्यों की एक प्रेसिडियम" गठित की। जो मत्रिमण्डल या "काऊंसिल ऑव कामिसॉर्स, " पर अंकुश रखती थी। 18 वर्ष आयु वाले उन सभी स्त्रीपुरूषों को मताधिकार प्रदान किया गया जिनकी जिविका का साधन श्रम था। निजी व्यापारी, पादरी, शासक परिवार के सदस्य आदि को मताधिकार से वंचित कर दिया गया।

सरकार ने जमीदारों एवं बड़े-भूपतियों की जमीन को राज्य की भूमि घोषित करके उन्हें कृषकों में वितरित कर दी। औद्योगिक क्षेत्र में सरकार ने मजदूरों के नियंत्रण की नीति प्रारम्भ की गई जिसके आधार पर मजदूरों के प्रतिनिधि कारखानों के संचालन में भाग लेने लगे। बडे-बडे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया। निजी व्यापार पर प्रतिबन्ध आयत कर दिया। इसके साथ ही बैंकिग व्यवस्था एवं विदेशी व्यापार पर भी नियंत्रण स्थापित कर दिया। राज्य ने अपनी और से कृषि करने की कोई व्यवस्था नहीं की बल्कि अनाज की आवश्यकता की पूर्ति हेतू अनिवार्य अनाज वसूली व्यवस्था लागू की जिसके आधार पर किसान अपने खाने एवं बीज को छोडकर शेष को राज्य भण्डार में जमाकर खाना पडता था। कृषि एवं औद्योगिक सम्बन्धी नीति से किसानों एवं श्रमिकों में असंतोष उत्पन्न हुआ कई स्थानों पर कृषक विद्रोह भी हुऐ यहां तक कि क्रान्सटार में सोवियत बेड़े के नाविकों "ने विद्रोह कर दिया और नवीन संविधान सभा का निर्वाचन कराने एवं निजी व्यापार पुन: प्रारम्भ कराने की मांग की। जिसके फलस्वरूप बोल्शेविक सरकार को आर्थिक नीति में व्यापक परिवर्तन करना पड़ा।

बोल्शेविक सरकार ने राष्ट्रीय झण्डे का रंग लाल नियत किया और उस पर दर्राती (किसानों का चिन्ह) एवं हथोडा (मजदूरों का चिन्ह) अंकित किया गया। राष्ट्रीय चिन्ह में यह भी अंकित किया गया कि "रूसी सोशिलिस्ट सोवियत फेडरल रिपब्लिक", संसार के श्रमिकों मिलकर एक हो जाओ।" लेनिन का कहना था कि यह रूसी सरकार सही मायने में लोकतंत्रीय सरकार है अन्य लोकतंत्रीय राज्यों का इससे कोई मुकाबला नहीं हो सका। इस सरकार ने बाह्य एवं आन्तरिक सब प्रकार के भयों से नये शासन की रक्षा करने एवं एक नई सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को कायम करने में असाधारण तत्परता एवं योग्यता प्रदर्शित की इस सरकार के प्रयत्नों (विशेषकर लेनिन के) से वहां न केवल पुरातन व्यवस्था का अन्त हुआ बल्कि एवं नवीन व्यवस्था एवं सभ्यता भी सामने आई।

22.8 अनुभागीय सारांश

1917 की क्रांति का सूत्रपात 8 मार्च, 1917 को हुआ जबकि मजदूरों ने रोटी के लिए चिल्लाते हुए जारशाही के नाश के लिए नारे बुलंद किये जार ने उन्हें अपनी शक्ति के बल पर कुचलना चाहा लेकिन वह असफल रहा और पद से हटना पड़ा। ऐसे में क्रांतिकारियों ने ल्वाव के नेतृत्व में अस्थाई सरकार बनाई जिसने धर्म, भाषा, प्रेस, की आजादी जनता को प्रदान की। लेकिन युद्ध को जारी रखने की नीति के कारण उसका विरोध होता रहा। क्रांतिकारी एवं विद्रोही लोगों को पकड कर जेल में ठूंसा जाने लगा। लेकिन कुछ समय बाद इन क्रांतिकारियो को रिहा कर दिया गया। 6-7 नवम्बर को लेनिन के समर्थकों ने पैट्रोग्राड के महत्वपूर्ण स्थानों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके साथ ही अस्थाई सरकार का पतन हो गया। लेनिन ने अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन में युद्ध से अलग हटने एवं भूमि का किसानों में वितरण सम्बन्धी दो प्रस्ताव

रखे। नवम्बर 1917 में लेनिन ने नई सरकार गठित की। जिसने जर्मनी के साथ संधि करके रूस को युद्ध से अलग कर दिया। जो कि एक महत्वपूर्ण कार्य था लेकिन इस कार्य से मित्र राष्ट्र एवं क्रांतिविरोध ताकतें क्रांति को खत्म करने के लिए सक्रिय हो उठी जिन्होंने सभी प्रयासों से क्रांति का अन्त करना चाहा, लेकिन वे बोल्शेविकों की शक्ति के सामने टिक नहीं सकी।

इस नई सरकार ने भाषा, धर्म, प्रेस इत्यादि की घोषणाओं के साथ कार्य के घंटे भी तय कर दिये। एक नवीन संविधान बनाया गया जिसके आधार पर "रशियन सोशिलिस्ट फेडरल रिपब्लिक की स्थापना हुई एवं मास्को को राजधानी बनाया गया। प्रत्येक स्त्री, पुरूष, जिसकी आयु 18 वर्ष थी, को मताधिकार दिया, निजी एवं विदेश व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उद्योगो का राष्ट्रीयकारण करके उन्हें मजदूरों के नियंत्रण में दे दिया। जमीदारों की जमीनों को किसानों में बॉट दिया। हालांकि इस व्यवस्था में दोष भी थे जिनसे मजदूरों व कृषकों में असंतोष फैला था, लेकिन उन्हें दबा दिया गया। लेकिन भविष्य में एक नई आर्थिक व्यवस्था लागू करने के लिए सरकार को बाध्य किया। इस तरह से बोल्शेविकों ने अपने प्रयासों से सर्वहारा वर्ग का अधिनामकतंत्र स्थापित करके साम्यवादी शासन व्यवस्था स्थापित की जिसका श्रेय मुख्य रूप से लेनिन को ही जाता है।

22.9 क्रांति का प्रभाव

1917 की रूसी राज्य क्रांति को यूरोप की ही नही बल्कि सारे विश्व की एक युगान्तकारी घटना मानी जाती है। फ़्रांसीसी क्रांति ने यद्यपि प्रजातांत्रिक विचारों को प्रतिष्ठित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास किया था लेकिन कालांतर में वहां भी राजतंत्रात्मक व्यवस्था ने अपने पैर दुबारा जमा लिये थे। लेकिन रूसी क्रांति ने अपने सिद्धान्तों को न केवल अपने देश में अब तक स्थापित कर रखा है बल्कि उन सिद्धान्तों, विचारों की लपेट में अन्य देश भी आ गये। जहॉ पर भी सर्वहारा वर्ग की सरकारें (साम्यवादी सरकारें) स्थापित हुई। इतिहासकार एच०जी० वेल्स ने इस क्रांति को इस्लाम के उदय के बाद होने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्णघटना बताया है। वाल्श ने रोमन साम्राजय के पश्चात् इस क्रांति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। उधर लास्की महोदय का कहना है कि ईसा के जन्म के बाद होने वाली घटनाओं में यह अंतिम महत्वपूर्ण घटना है। वास्तव में देखा जाये तो यह क्रांति सिद्धान्त, कार्यक्षेत्र, विस्तार एवं तात्कालीन परिणामों की दृष्टि से महानतम घटना है जिसने वर्गहीन समाज, श्रमिक संगठन, अंतर्राष्ट्रीय संगठन एवं विश्व-व्यापी क्रांति का बिगुल बजाया है।

इस क्रांति के प्रभाव को हम मोटे रूप से दो भागों से बांट सकते है (1) रूस में क्रांति का प्रभाव - 1917 की मार्च की क्रांति ने निरंकुश जारशाही पर प्रहार करके उसे धराशायी कर दिया एवं उसके स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना की लेकिन उदारवादी सिद्धान्तो पर प्रजातंत्र का प्रयोग सफल नही हो सका। नवम्बर में हुई बोल्शेविक क्रांति ने बुर्जुआ गणतंत्र को समाप्त कर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित किया। मार्च की क्रांति एक राजनीतिक अध्याय थी एवं नवम्बर की क्रांति ने मजदूर गणतंत्र को जन्म दिया। इस क्रांति के द्वारा कुलीनतंत्र के वर्चस्व एवं चर्च की सत्ता का अन्त कर दिया गया। नवम्बर की क्रांति ने रूस के सामाजिक एवं

आर्थिक ढांचे में आमूल परिवर्तन किया एवं उत्पादन शाक्तियों एवं समाजिक प्रगति के अधिक विकास का मार्ग-प्रशस्त किया।

नवम्बर 1917 में नये राज्य की पहली घोषणा की गयी। इस घोषणा के आधार पर रूस युद्ध से हट गया एवं जर्मनी से मार्च, 1918 में ब्रेस्टलिटोवस्क की संधि कर ली जिसके आधार पर रूस ने एक विशाल भू प्रदेश जर्मनी को सौंप कर देश के लिए शन्ति खरीद ली। सारी रूसी जनता के लिये शन्ति छटपटा रही थी। शान्ति मिलने से रूसियों में नई सरकार की क्रियात्मकता एवं गतिशीलता की नीति पर विश्वास जम गया।

बोल्शेविक सराकर ने एक घोषणा द्वारा मजदूरों, सिपाहियों एवं कृषकों के अधिकारों की घोषणा की जागीरदारी एवं जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई। जमीदारों एवं कुलीनों की भूमि पर किसानों का आधिपत्य कायम हुआ। एक अन्य घोषणा द्वारा मजदूरों को मिल, उद्योगों, खानों आदि पर अपना नियंत्रण जमाने की आज्ञा मिल गई जिससे उत्पादन के साधानों पर राज्य का अधिपत्य हो गया। बैंको, बीमा कम्पनियों, यातायात के साधनों व्यापरित केन्द्रो एवं वितरण के साधानों पर राज्य अधिकार स्थापित कर दिया गया। नवीन शिक्षा पद्धति जिसका उद्देश्य साम्यवादी समाज का निर्माण करना था। लागू की गई। क्रांति के बाद रूस में एक नवीन सभ्यता, नई संस्कृति का जन्म हुआ, साम्यवाद की नवीन विचारधारा ने संस्कृति एवं समाज के सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये।

जारशाही की समाप्ति कर रूस ने एक नवीन युग में प्रवेश किया। इस नये राज्य की नीतियां "प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता एवं कार्य के अनुसार" के समाजवादी आदर्श पर आधारित थी। प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य करना जरूरी था। समाज एवं सरकार का यह कर्तव्य हो गया कि - वे प्रत्येक व्यक्ति को कार्य के अवसर प्रदान करे "काम का अधिकार" संवैधानिक अधिकार हो गया। उत्पादन में वैयक्ति पूंजी एवं लाभ को हटा दिया। इससे परस्पर विरोधी हितों वाले वर्गो का अन्त हो गया एवं समाज में निहीत असमानताऐं लुप्त हो गई।

गैर रूसी राष्ट्रीयताओं के लिए यह क्रांति अधिक महत्वपूर्ण थी। अब तक के रूसी इतिहास का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जारशाही शासन में गैर रूसी जातियों का दमन किया जाता था लेकिन अब वे एक गणंतत्र के रूप में रूस के अंग हो गये। समस्त राष्ट्रयताओं को बराबर का दर्जा एवं सोवियत व्यवस्थापिका में बराबर का प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इन्हें अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षार्थ स्वायत्ता प्रदान की गई। नियोजित आर्थिक विकास एवं शिक्षा के प्रसार ने इन्हें पिछडेपन से उबारकार आधुनिक रूप प्रदान किया। विश्व इतिहास में प्रथम बार एक ऐसे राज्य का अभ्युदय हुआ, जिसने अनेकों जातियों के विभिन्न सिद्धांतों के बीच नवीन सिद्धांतों पर आधारित नये सम्बन्धों का सूत्रपात किया। रूसी राज्य के स्थान पर नवीन सरकार में नये राज्य को संघ राज्य मे बदल दिया। 1922 मे इस संध का नाम यू.एस.एस.आर. (समाजवादी सोवियत गणतंत्र यूनियन) रखा इससे पूर्व 1920 में बोल्शेविक दल को "सोवियत संघ की कम्युनिष्ट पार्टी का नाम दिया गया था।

बोल्शेविक सरकार न जार व उसके कुटुम्ब क सदस्यों को गोली से उड़ा दिया गया। रोमामानॉव वंश कें अन्य सदस्य या तो जेल मे डाल दिये गये या फिर वे देश से पलायान कर गये। विदेशी ऋण का भुगतान करने मे भी इस नई सरकार ने मना कर दिया। विदेशी पूंजी का

राष्ट्रीयकरण हों गया जिसकी भंयकर प्रतिक्रिया हुई एवं कुलीनों, जागीरदारों, सामन्तों एवं सेनापतियों ने वोल्शेविक सरकार के विरूद्ध गृह वृद्ध छेड़ दिया। जिन्हें विदेशी शक्तियों का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से सहयोंग प्राप्त था। लेकिन वोल्शेविक इस गृहयुद्ध में सफल रहे। 1922 में लेनिन ने "नई आर्थिक नीति" द्वारा देश की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयत्न किये। लेनिन के बाद स्हालिन ने प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू कर देश में समाजवाद की नींव डाली।

22.9.2 बाह्य जगत पर क्रांति का प्रभाव एवं महत्व :

1917 की रूसी क्रांति का प्रभाव एवं महत्व केवल रूस के 'आन्तरिक मामलों तक ही सीमित नहीं रहा। बल्कि बाह्य जगत भी इस क्रांति के महत्व एवं प्रभावों से मुक्त नहीं रह सका। विश्व इतिहास की भविष्य में होने वाली गतिविधियों को इस क्रांति ने काफी प्रभावित किया है। इस क्रांति के फलस्वरूप विश्व में पहली बार मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर आधारित सर्वहारा वर्ग की सरकार बनी। जिसने रूस के अलावा विश्व की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं को काफी प्रभावित किया। इस क्रांति के कारण ही मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रयोग एवं प्रसार अवश्यम्भावी था। इसी के परिणामस्वरूप साम्यवादी विचारधारा का प्रसार विश्व के अनेक देशों में हुआ। साम्यवादी दल के अलावा अनेक ऐसे दल हैं जो सामाजवादी विचारधारा रखते है एवं समाजवादी विचारों के आधार पर ही अपने कार्य करते है। समाजवादी सिद्धान्तों की लोकप्रियता एवं रूस में उनकी सफलता ने प्रजातंत्र को पुर्नपरिभाषित करने के लिए बाध्य किया। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था वाले देशों ने यह महसूस किया कि सामाजिक एवं आर्थिक समानता के राजनीतिक समानता अधूरी है। उन्होने आर्थिक नियोजन के विचार को अंगीकार किया एवं मजदूरों कृषकों एवं दलित लोगों की अवस्था में सुधार हेतु कानून बनाये बाईबल के इस विचार को कि ''जो काम नहीं करेगा वह खायेगा नही'' को रूसी क्रांति ने पुर्नजीवित किया इससे पद दलित वर्गो एवं मजदूरों में सम्मान का भावना जागृत हुई। समाजवादी विचारधारा ने जाति, रंग लिंग एवं आर्थिक आधार पर भेद-भाव को समाप्त कर वास्तविक प्रजातंत्र का मार्ग प्रशस्त किया।

इस क्रांति ने एक नये युग के द्वार खोले अब तक राज्य सत्ता बुर्जूआ वर्ग के हाथ मे ही रहती थी। लेकिन इस क्रांति से किसानों, श्रमिकों, एवं सैनिकों के हाथ राजसत्ता आने लगी। बुर्जआ समाज में श्रमिकों को बुद्धिहीन अयोग्य एव शासन के लिये अनुपयुक्त समझा जाता था। लेकिन सरकार की सफलता ने केवल श्रमिक वर्ग की योग्यता ही प्रदर्शित नहीं की बल्कि इस सिद्धान्त को व्यापक बना दिया कि श्रमिक सरकार ही वास्तविक जनहितकारी कार्यक्रम बना सकती है। विश्व मे सबसे पहले श्रमिक सरकार बनाने का श्रेय रूस को ही जाता है।

नवम्बर 1917 में होने वाले बोल्शेविक क्रांति का तत्कालीन परिणाम यह निकला कि साम्यवादी सरकार ने तुरंत ही जर्मनी से ब्रेस्टलिटोयस्क की संधि करके अपने को विश्व युद्ध से अलग कर लिया। मित्र राष्ट्रों ने इस संधि को रूस द्वारा जानबूझ कर उन्हें हराने के लिए किया गया विश्वासधात समझा। जारद्वारा की गई सभी संधियों एवं गुप्त समझोतों को जार ने अमान्य घोषित कर दिया। इसलिए पेरिस शान्ति सम्मेलन में जो प्रदेश रूस को मिलने वाले थे

अन्य मित्रराष्ट्रो को दे दिये गये। मित्र राष्ट्रों ने उसे मान्यता नहीं दी एवं संयुक्त राष्ट्र संघ का उसे सदस्य भी नहीं बनाया। रूसी क्रांति के परिणामों को सनिष्क्रिय करने का प्रयत्न किया। रूसी प्रतिक्रियावादियों को सक्रिय सहायता भी मित्र राष्ट्रों ने दी ताकि वे क्रांति को दबाकर पुन: पुरातन व्यवस्था स्थापित कर सके। विश्व के अनेक देशों ने रूस से व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लिये थे। लेकिन क्रांतिकारियो का उत्साह एवं हौसला ठंडा नही पड़ा अन्तत: वे सफल रहे। ऐसे व्यवहार का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर कटु प्रभाव पड़ा।

रूसी साम्यवादियों ने अपनी क्रांति को अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति की दिशा में कदम माना जिसका उद्देश्य पूंजीवाद एवं राष्ट्रवाद के विनाश का मार्ग प्रशस्त करना था। इसके लिए उन्होंने एक नारा दिया कि विश्व के मजदूरो, एक हो जाओ तुम्हें अपनी जंजीरो के अतिरिक्त कुछ नही खोना है। ''विश्व के अधिकांश देशों मे साम्यवादी दल बनाये गये और उन्हें कोमिन्टर्न (Commintion) नामक संस्था से आबद्ध किया। जिसके प्रमुख कार्य विभिन्न देशो मे साम्यवादी दलो का संगठन करना, धन संबंधी सहायता प्रदान करना, श्रमिकों व कृषको में पूँजीवाद व बुर्जुआ सरकार के विरूद्ध क्रांति एवं विद्रोह की भावनाएँ भड़काना इत्यादि थे। जिसने अमेरिका जैसे पूंजीवादी राष्ट्रो में भी "लाल आंतक" का सूत्रपात किया। इस संस्था से अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन का नेतृत्व साम्य वादियों के हाथों में आने लगा। इस संस्था का नारा “विश्व क्रांति" था जिसने पूंजीवादी देशों में इस क्रांति के सिद्धान्तों के विरूद्ध आवाज उठाई। अत: विश्व साम्यवादी एवं पूंजीवादी गुटों के विभाजित हो गया। इससे अंतर्राष्ट्रीय तनाव में वृद्धि हुई।

क्रांति की सफलता ने साम्राज्यवादी विचारधारा पर गहरा आधात किया। फलत: विश्व साम्राज्यवादी श्रृंखला छिन्न -भिन्न होने लगी। रूस जो दूसरी बहुत बड़ी कड़ी था। वह इससे अलग हो गया। साम्राज्यवाद का एकाधिपत्य समाप्त हो गया। भू-मण्डल के छठे भाग पर समाजवाद की विजय पताका फहराने लगी। साम्यवाद ने उपनिवेशों के लोगों को साम्राज्यवाद के विरूद्ध उठ खडे होने की प्रेरणाप्रदान की। क्रांति ने ही उपनिवेशों के राष्ट्रीय आन्दोलन कें स्वरूप को परिवर्तित किया। अब राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक समानता तथा नियोजित अर्थ-व्यवस्था की मांग की जाने लगी।

इसके अतिरिक्त रूस। साम्यवाद के प्रसार से आंतकित मित्र राष्ट्रों ने युद्धोत्तर काल में उसके विरूद्ध दीवार खडी करने के लिये इटली, जर्मनी, आदि देशों को शक्तिशाली बनाने की नीति अपनाई जिसके कारण उन देशों में अधिनायकवाद को प्रोत्साहन मिला।

इस क्रांति का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव एवं परिणाम यह निकला कि वह रूस जो प्रथममहायुद्ध एवं उससे पहले जर्मनी, जपान, इत्यादि देशों द्वारा पराजित किया जा चुका था। सत्तपरिवर्तन के बाद उसने द्रुतगति से चहुँमुखी विकास करके अमेरिका एवं अन्य देशों के बराबर रह कर जो प्राप्त किया एवं विश्व मे शक्ति सन्तुलन बनाये रखने में अपना महत्वपूर्णयोगदान देते हुये स्थान निर्धारित किया।

इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि फ़्रांसीसी क्रांति के समान ही यह रूसी क्रांति भी एक युगान्तकारी घटना थी जिसका प्रभाव रूस के इतिहास तक ही सीमित नहीं है बल्कि मनुष्य जाति के इतिहास में 7 नवम्बर, 1917 का दिन एक महान एवं अविनाशी सीमा चिन्ह के रूप

में विद्यमान है। नवम्बर क्रांति ने रूस के समाजिक, राजनीतिक, एवं आर्थिक ढांचे मे आमूल चूल परिवर्तन किया। और उत्पादन शक्ति एवं सामाजिक प्रगति के विकास का मार्ग-प्रशस्त किया। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इस क्रांति से अनेक साम्राज्यवाद पर करारा चोट करके पूंजीवाद की नींव हिला दी। मजदूरों की स्थिति में सुधार कर अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना का प्रचार किया।

22.10 इकाई सारांश

1917 की रूसी क्रांति 1789 की फ़्रांसीसी क्रांति के बाद विश्व इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी यह अपने ढंग एक विलक्षण एव स्थाई क्रांति सिद्ध हुई जिसने रूसी जनता के जीवन के सभी अंगों को प्रभावित किया एक इससे उत्पन्न विचार समस्त विश्व में फैल गया। 1917 से पहले भी 19०5 में रूस में एक क्रांति हो चुकी थी जो वहां के जारशाही के निरंकुश एवं अत्याचारी शासन के विरूद्ध कुलिनो के विरुद्ध थी। किसानो की शोचनीय अवस्था, बुद्धिजीवी एवं लेखक वर्ग का उदय, मजदूरों की हीन अवस्था बुद्धिजीवी एवं विदेशी आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना करने में असमर्थ रहने के कारण भी यह यह क्रांति अवश्यम्भावी थी। जिसने विशाल "एवं उग्र रूप धारण कर लिया। जिसके कारण विवश होकर जार को जनतांत्रिक व्यवस्था सम्बन्धी प्रयोग करने पडे लेकिन कुछ समय बाद उसने फिर प्रतिक्रियावादी नीति को अपना लिया। जिसके परिणाम स्वरूप उपरोक्त कारणों से 1917 में दुबारा क्रांति का सूत्रपात हुआ जिसका तात्कालिक कारण प्रथम विश्वयुद्ध में सर्वत्र उसकी अपमानजनक पराजय होना था। समाजवादी दलों विशेषकर बोल्शेविक दल ने इस असन्तोष एवं विद्रोह की भावना का लाभ उठाकर जनता को भड़काया। फलत: 8 मार्च, 1917 को मजदूरों ने हड़ताल कर दी जिसे जार दबाने में असमर्थ रहा। मजदूरों एवं सैनिकों से अपनी सगंठित संस्थाऐं बना ली एवं उन्होने ही "अस्थाई सरकार गाठित करके जार को गछदी से हटाने में सफलता पाई। अस्थाई सरकार उनकी इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर सकी। बोल्शेविक ने पुन: मजदूरों किसानों सैनिकों से विद्रोह करवा दिया एवं राजधानी के महत्व पूर्ण स्थानों पर दल ने कब्जा कर लिया एवं अस्थाई सरकार को धराशाही करके एक नवीन सरकार बनाई जिसने दो प्रस्तावों द्वारा विश्व-युद्ध से बिना हर्जाने के दिये हट जाना एवं कृषकों को भूमि वितरण करना-जन समर्थक प्राप्त कर लिया। लेनिन नई सरकार का अध्यक्ष बना जिसने जर्मनी से संधि करके रूस में शान्ति स्थापित की। मजदूरों के गणतंत्र की स्थापना होने एवं रूस के युद्ध से हाथ खींच लेने के कारण सरकार को आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा जिसने कुछ समय बाद अपनी श्रेष्ठता साबित करते हुऐ अपने शासन को बनाये रखा। एक नवीन संविधान बनाया गया जिसके भाषा, धर्म, प्रेस, सभा इत्यादि की स्वतंत्रता जनता को प्रदान की एवं मानव अधिकार घोषण पत्र भी जारी किया। रूस को "रशियन सोसलिस्ट, सोवियत रिपब्लिक नाम रखा एवं पेट्रोग्राड के स्थान पर मास्को को राजधानी बनाया। शासन चलाने के लिए एक प्रेसिडियम बनाई जो मंत्रिमण्डल पर अंकुश रखती थी। जमीदारों की जमीनें छीन कर किसानों को दे दी एवं उद्योगों पर मजदूरों का नियंत्रण स्थापित किया। बडे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर लिया। नई व्यवस्था साम्यवादी व्यवस्था कहलाने लगी। जिसने सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में भी आधारभूत परिवर्तन किये।

इस 1917 की क्रांति का रूस के इतिहास में ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास में महत्व है। जिसने रूस में जारशाही का अन्त किया सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र स्थापित किया। विश्व जमींदारी प्रथा समाप्त की। नवीन शिक्षा पद्धति से साम्यवादी समाज का निर्माण लिया गैर रूसियों को सभी स्वतंत्रतायें दी गई एवं उन्हें एक गणतंत्र का रूप दिया। एक नवीन आर्थिक नीति द्वारा देश का विकास हुआ। बाह्य जगत पर भी इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। मार्क्सवादी सिद्धान्तों को विश्व में फैलाने का प्रयास शुरू हुआ जिसके कारण अनेक देश मार्क्सवादी बने। पूंजीवादी देशों ने आर्थिक सुधार करके मजदूरों एवं किसानों की अवस्था में सुधार किये। नवीन व्यवस्थाओं ने जार द्वारा की गई संधियों एवं समझौतों को अमान्य ठहराया। विश्व साम्यवादी एवं पूंजीवादी दो खेमों में बंट गया। साम्राज्यवाद का अन्त होना एवं राष्ट्रीयता चेतना आना भी इस क्रांति का एक प्रभाव था। रूस ने द्रुतगति से आना विकास करके एवं विश्व शक्ति के रूप में अपना उभार किया एवं विश्व में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

22.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

(i) Lipson, E : Europe in the 19th and 20th centruries.

(ii) Grant and Tempulay : Europe in the 19th and 20th centuries.

(iii) ह्यूसेटन -वाटसन : दी डिक्लाइन ऑफ इम्पीरियल रशा।

(iv) आइजेक ड्रयूटसर : दीन्यू केम्ब्रिजमॉर्डन हिस्ट्री Vol. XII

(v) क्रेग, गोर्डन : यूरोप सिंस 1815

(vi) सम्नर, बी.एच. : रूसी इतिहास का सर्वेक्षण

(vii) वर्नादस्की, जार्ज : रूस का इतिहास

22.12 अभ्यास कार्य -

(1) उन परिस्थितियों का वर्णन जिसके कारण रूस की राज्य क्रांति हुई।

(2) रूसी राज्यक्रांति के कारण एवं घटनाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिऐ।

(3) रूस की 1917 के क्रांति का रूस एवं बाह्य जगत पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

इकाई-23
लेनिन आंतरिक तथा विदेशी नीतियाँ

इकाई संरचना

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 लेनिन की आंतरिक नीति तथा परंराष्ट्र नीति

23.3 न्यू एकोनोमिक पालिसी

23.4 बोध प्रश्न

23.5 संदर्भ ग्रंथ

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप निम्न बातों से परिचित को सकेंगें -

(1) लेनिन की आंतरिक व विदेशनीति

(2) नवीन आर्थिक नीति

23.1 प्रस्तावना

लेनिन का असली नाम व्लैदामिर एलिच उनियानव था परन्तु वह रचनात्मक उपनाम लेनिन से प्रसिद्ध हुआ। उसका जन्म 1870 में वोल्गा नदी पर बसे सिमबिस्क नामक नगर में (जो अब लेनिन के नाम पर उनियानव कहलाता है) एक बुद्धिजीवी परिवार में हुआ। प्रारंभ से ही अतिवादी लेनिन काजान विश्वविद्यालय का प्रतिभाशाली छात्र रहा। जब उसके बड़े भाई को जार एलेक्जेन्डर थर्ड के हत्याकाण्ड के आरोप में फांसी पर चढ़ाया गया तो लेनिन भी क्रांतिकारियों में मिल गया। 1896 में जेल तथा 1899 में साइबेरिया में निर्वासन झेलकर लेनिन एक पत्रिका इसका (चिनगारी) से सम्बन्धित रहा। यदपि लेनिन प्लेखानव का भक्त रहा था पर 1903 में रूसी मार्कसिस्टों की पार्टी मीटिंग में उसने प्लेखानव को चैलेन्ज किया तथा जो विभाजन हुआ उसमें लेनिन के साथ मेनोरिटी रही इसी से लेनिन के अनुयायी "बाल्शविक" (बहुमत) कहलाए तथा अन्य मेनशाविक (अल्पमत) लेनिन का विचार था कि पार्टी तथा श्रमजीवी वर्गों को ही सर्वासत्तात्मक रहना चाहिए तथा इस क्रांति के लिए एक अनुशासित तथा कृतसंकल्प ग्रुप की आवश्यकता थी। लेनिन ने बहुत सी विवादात्मक पुस्तकें लिखी जैसे साम्राज्य तथा क्रांति", साम्राज्यवाद पूंजीवाद का सर्वोच्च स्टेज है तथा अन्य संग्रह। लेनिन में मीमान्सात्मक, व्यवहारिक तथा प्रयोगात्मक अनुभूति का सम्मिश्रण था जिसने उसे यथार्थवादी बना दिया था। अपनी तनम्यता द्वारा बुद्धजीवियों तथा जनसाधारण के बीच ताल मेल बना लेता था। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों में जो परिवर्तन लेनिन ने किया वह विश्व की परिवर्तनशील परिस्थितियों, रूस की आन्तरिक स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों को देखकर किए। यही मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त कहलाए। मार्क्स तथा एनगिल्ज ने नर्मी तथा अतिवाद दोनों मार्ग दर्शाए थे इसलिए लेनिन पर मार्क्सवाद को बिगाड़ने का आरोप लगाना सही नहीं। खेतिहर रूस में मजदूर वर्ग कम

था अत: लेनिन ने कृषकों को भी क्रांतिकारी शक्तियों में शामिल कर लिया। लेनिन का क्रांति कार्य कठिन अवश्य था क्योंकि मार्क्सवादी सिद्धान्त साम्राज्यवादी पूंजीवादी देशों को नजर में रखकर बनाए गये थे पर "अप्रेल थेसिस" से लेकर अपनी सभी रचनाओं में लेनिन ने समाधान ढूंढ कर लिख डाला। क्रांति सफल रही। लेनिन नवम्बर 1917 में लाल सेना सहित एक नए युग का निर्माण करने चला।

नई सोवियत सरकार लेनिन की अध्यक्षता में 9 नवम्बर को काउन्सिल आफ पीप्ल्ज कमीसार के नाम से प्रारम्भ हुई। लेनिन कम्यूनिस्ट पार्टी तथा राजनैतिक व्योरो दोंनो का मुख्याधिकारी थी। स्टालिन राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्ग का प्रभारी था। एलेक्सिज रीकोव आन्तरिक मामलों का एवं ट्राट सकी विदेशी मामलों का कमीसार हुआ। 10 जुलाई 1918 को प्रथम सोवियत संविधान गृहण करके सोवियत फिडरेटेड सोशलिस्ट पार्टी की शुरूआत हुई। लेनिन को इसके साथ ही अन्तिरिक तथा विदेशी मसलों से भी निपटना था।

23.2 लेनिन की आन्तरिक नीति तथा परराष्ट्र नीति

फारेन पालिसी अपने मूलाधारों सहित अन्त: सम्बद्ध तथा अन्योन्याश्रित थी। लेनिन ने क्रांति से पूर्व स्पष्ट रूप से कहा था कि कोई भी विचार इतना भ्रान्तिपूर्ण तथा हानिकारक नहीं जितना आन्तरिक तथा परराष्ट्र नीतियों को पृथक समझना" 1924 में जिनोविएव ने फिर यही घोषणा की थी कि हमारी बाह्य नीतियां कभी भी हमारी आन्तरिक नीतियों से इतनी जुड़ी न थी जितनी आज है।" फिर भी 1923 के संविधान में कुछ न कुछ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोचना था। मार्क्सवादी सिद्धान्तों में वैसे तो परराष्ट्र अथवा विदेशी नीति का कोई फारमूला नहीं क्योंकि क्रांति द्वारा वह समस्त संसार का एक "श्रम" राष्ट्र बनाने का स्वप्न लेकर आए थे। ध्येय था पूंजीवाद, साम्राज्यवाद से युद्ध, विश्व को दो भागों में (अर्थात पूंजीवादी तथा सोशलिस्ट) विभाजित करके इस विश्वास से चले कि साम्राज्यवाद के अन्तरनिहित पारस्परिक विरोधी तत्व स्वंय उसे नष्ट करने में सक्षम है। सोवियत रूस ने अन्य देशों के समान कुछ दीर्घकालीन प्रोग्राम (जैसे सोवियताईजेशन एवं कप्यूनिज़्म का विस्तार, मार्क्सवादी लेनिन वादी विचारधाराओं को कार्यान्वित करना) तथा कुछ अल्पकालीन प्रोग्राम (जैसे आत्मसुरक्षा तथा आन्तरिक प्रगति इत्यादि) बना रखे थे। इस बात पर सोवियत नीति साफ रही कि दीर्घकालीन प्रोग्रामों में भी सिद्धान्तों पर समझौता नहीं होगा। चाहने पर भी बाल्शविक रूस अक्समात् ही जार की रूढ़ीवादी शक्तियों तथा प्राचीन संस्कारों को समाप्त न कर सकता था। कुछ विद्वानों ने इसीलिए सोवियत रूस को प्रारंभिक दिनों में संस्कारवाद, राष्ट्रवाद, के बीच फंसा बताया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि सोवियत विदेशी नीति को उसके आत्मरक्षातन्त्र के संदर्भ में समझना चाहिये। चर्चिल ने एक बार कहा था कि लेनिन का उद्देश्य विश्व की सुरक्षा प्रदान करना था पर उसके लिए प्रणाली चुनी थी उसने विध्वंस की"। यह सभी कथन लेनिन की आन्तरिक तथा विदेशी कठिनाइयों के मध्य उत्पन्न नीतियों की ओर इंगित करती है।

क्रांति के पश्चात् सोवियत रूस में आन्तरिक अराजकता छा चली। गृह युद्ध के साथ पोलेन्ड से भी लड़ाई छिड़ गई। भूतपूर्व रोमानव राज्य के गैर रूसी तत्व स्वाधीनता की मांग पर लड़मर रहे थे क्रांतिविरोधी तत्व "श्वेत" भी हल्लाकर रहे थे। सबसे अधिक खतरा था सम्बद्ध

देशों से (मुख्यत: जापान से जिसने 60000 सैनिक भेजे थे) जो रूस के मामलों में हस्तक्षेप कर रहे थे। अंग्रेजों की 40000, अमेरीका की 10000, फ़्रांस इटली यूनान इत्यादि की टुकड़ियां भी अक्तूबर 1919 से जनवरी 1920 तक सोवियत समुद्री तट की नाके बन्दी कर रही थी जब कि इससे पूर्व उनका ध्येय केवल जर्मनी के आर्केन्जल तथा मुरमन्सक से युद्ध सामग्री बटोरने पर रोक लगाना था। उनमान केनान ने विस्तार पूर्वक इन समबद्ध देशों की समन्वित संदिग्ध गतिविधियों पर प्रकाश डाला है पोलेन्ड तथा अन्य सम्बद्ध देशों का तो ध्येय सीमित था अपने हितों की रक्षा तक पर "श्वेत" का उद्देश्य लाल रूस को समाप्त करना था। पर श्वेत के पास उतने अच्छे हथियार तथा बड़ी सेना न थी जैसी 'लाल" क्रांतिकारियों के पास जो रूस का मध्यवर्ती भाग (यातायात, व अन्य औद्योगिक सैनिक साधानों सहित) कन्ट्रोल किए थे लाल सुंसगठित, सुसशस्त्र भी थे। राजनैतिक तथा भौगोलिक स्थिति ने श्वेत को पारस्परिक द्वन्दता का शिकार कर दिया समबद्ध देशों के सैनिक जो अपने घरों को लौटना चाह रहे थे या अफसरों के आर्डर के पाबन्द थे अधूरे मन से उनका साथ दे रहे थे। जगह जगह विद्रोह फिर भी फूट रहे थे। उच्चतम मध्यवर्ग श्वेत को समर्थन दे रहा था। कृषकों ने श्वेत तथा लाल दोनों के हाथों झेला था। सो वह अलग रहे। एक श्वेत विद्रोह जून जुलाई में समारा में दबाया गया। चायकोन्सका ने फ़्रांस तथा ब्रिटेन की सहायता से एक सरकार बनाई। पूर्वी सीमा पर बुखारा में सोवयित यूनियन ने बसमाचियों (देशीय मुसलमान जो अखिल तूरानी राज्य का स्वप्न देखने वाले नेता अनवर पाशा के नेतृत्व में विद्रोह कर रहे थे।) को 4 अगस्त 1922 में पराजित करके 2 रिपब्लिक (उजबेकिस्तान तथा ताजिकिस्तान) बना दी।

26 फरवरी 1921 को पार्शिया और सोवियत रूस के बीच सन्धि हुई जिसके अंतर्गत भूतपूर्व सभी विशेषाधिकार मास्को ने स्वेच्छा से रद्द कर दिया। सितम्बर 1920 में बाकू में एक कांग्रेस आफ ओरियन्टलिस्ट हुई ताकि एशिया में साम्राज्यवादी शक्तियों के विनाश का तरीका निकाला जाए। एशिया की आध्यात्मिक, धार्मिक स्थिति में कप्यूनिज़्म केवल छोटे गुट ही बना सका था। जापानी इच्छुक थे कि रूसी शक्ति के पतन के पश्चात फार ईस्ट ले लें। जापानी सेनाओं ने सखालीन के रूसी भाग में तथा साईबीरिया के एक बड़े भाग में अमेरिका, ब्रिटेन फ़्रांस, इटली के साथ बढना शुरू किया। दूसरे सम्बद्ध देशों ने ओडिसा तथा बातुम में डेरा डाला। यह अक्तूबर 1919 से जनवरी 1920 तक सोवियत तटवर्ती सीमाओं की नाकेबन्दी कर दी तथा श्वेत सेनाओं को भी सहायता देते रहे जैसे डंकन की सेना को ब्रिटिश टैंक दिए। इस जमघट से भी विद्रोहियों का बडा सहारा था। 1920 में यह सेनाएं चली गईं पर जापान रूसी फारइसट के समुद्री प्रान्तों में 1922 तक तथा सखालीन में 1925 तक डटे रहे।

सम्बद्ध देशों की सेनाओं के हटने के बाद पोलेन्ड तथा रूस में संघर्ष अप्रेल 1920 से अक्तूबर मध्य तक चलता रही क्योंकि पश्चिमी उकराइन तथा बेलोरूस को पोल पोलेण्ड निवासी अपना समझतें थे। जून जूलाई में पोलेन्ड निवासियों ने रूस पर चढाई की। यद्यपि लाल सेना ने माइकेल तुकाचेव्सकी के नेतृत्व में वारसा तक लडाई की पर फ़्रांसीसी सहायता से पोलेन्ड ने रूस को पराजित कर दिया। वोल्गा की सन्धि 18 मार्च 1921 को हुई जिस से पोलेंन्ड को सारी मनचाही भूमि कूजन लाइन तक मिल गई।

अप्रैल 1920 में समबद्ध देशों (Allied forces) की सेना चेकोस्लोवाकिया के सेनानियों सहित साइबीरिया से यूरोप चली परन्तु जापानी तटवर्ती प्रान्तों में डटे रहे जब कि रूसी काम्प्राडोर आतमान सेमेनोव टोकियो की सहायता सें ट्रान्सबयकाल पर राज्य करता रहा। चूँकि सभी सीमावर्ती इलाकों पर सफेद लोगों की पराजय हो रही थी जापानी हस्तक्षेप के विरूद्ध राष्ट्रीय असंतोष फैल रहा था तथा अमेरिका का दबाव भी बढने लगा था तो टोकियो को साइबीरिया छोड़ना पड़ा। वाशिंगटन कान्फ्रेन्स में सेक्रेट्री आफ स्टेट हफ ने बैरन शीदेहारा से यह आश्वासन तो ले लिया था कि पूर्वी सखालीन पर जापान का आधिपत्य केवल अंतरिम तथा अस्थायी है। जैसे ही कोई सुदृढ़ शासन रूस में स्थापित हुआ जापान को उसे छोड़ना होगा। यह भी कहा गया कि रूस के आन्तरिक मामलों में जापान हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा रूस की क्षेत्रीय अखंडता का आदर करेगा। यधपि अमरीका ने यह स्पष्ट नहीं किया था कि सुदृढ शासन से उसका तात्पर्य क्या है पर इस कान्फ्रेन्स मे अमरीका की रूस जापान सम्बन्धों के संदर्भ में ली गई नीति का स्पष्टीकरण अवश्य हो गया।

रूस ने धीरे धीरे सेनाओं द्वारा श्वेत सेना पूर्व से हटाने का निश्चय किया। 3 सितम्बर से 25 अक्तूबर 1922 तक जापानी फौजों ने तटवर्ती सीमा के सूबों को छोड़ दिया पूर्वी साईबीरिया में रूस के राज्य का पुर्नसंगठन हुआ। नवम्बर 14, 1922 तक मास्को को दोबारा सोवियत यूनियन में ले लिया गया। जापान ने भी यह मान लिया कि सोवियत सरकार अब सुदृढ़ हो या नही पर ''वास्तविक'' अवश्य थी। सितम्बर 1923 के भीषण भूकम्प से जो आर्थिक क्षति जापान को हुई उससे शान्ति की लालसा तीव्र हो गई। रूस भी आर्थिक रूप से जापान के लिए महत्व रखता था। समस्त एशिया ये राष्ट्रीयता की लहर दौड़ रही थी। 1921 में एग्लो जापानी सन्धि हुई। अमरीका की जापान के प्रति शत्रुता ऐन्टी जापानी इमिगरेशन ला (जापान विरोधी आप्रवास नियम जो 1924 में पास हुआ) द्वारा प्रमाणित हो चुकी थी। सितम्बर 1920 में बाकू में एक कांग्रेस आफ ओरियन्टलिस्टस का आयोजन हुआ जहाँ यह विचार विमर्श हुआ कि किस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियों को एशिया में तोड़ा जाए। एशिया अपनी आध्यात्मिक तथा धार्मिक वातावरण ''पिछड़ी सभ्यता'' तथा आर्थिक स्थिति के कारण कन्यूनिज़्म के लिए ''तैयार भूमि'' न था।

ब्रिटेन ट्रान्सकाकेसिया और मिडिलईस्ट से अगस्त 1919 से हट गया और 7 जुलाई 1920 को बातुम से भी सेना की टुकडी ब्रिटेन ने हटा ली। अब उस की तेल के इन खजानों की प्राप्ति असम्भव रही थी। मास्को ने अपनी दक्षिणी तथा दक्षिण पश्चिमी सीमाऐं सुरक्षित कर ली। उत्तरी दबाव के कारण जार्जिया की मानशेविक गर्वनमेंट गिर गई और उसे भी सोवियत रूस ने ले लिया। एक ट्रान्सकाकेसियन फ़िडरेटिव सोवयित रिपब्लिक बन कर सोवियत यूनियन के खानदान में सम्मिलित हो गई। जिसमें अरमीनिया, आजरबाईजान था। इस प्रकार काकेसस को ले लेने के पश्चात विश्व की राजनीति में तेल के लिए चलने वाला 7 वर्ष पुराना युद्ध समाप्त हो गया। पर पार्टी में इस निर्माण के कार्य की नीति पर मतभेद था। सिविल बार की समाप्ति के पश्चात कुछ तो क्रांति के अंतराष्ट्रीय महत्व तथा फैलावे की बात सोच रहे थे तो कुछ इस पर जोर दे रहे थे कि साम्राजयवादी देशों के मुचैटो से मिला वह कम समय का छुटकारा किस प्रकार राष्ट्र के निर्माण में लगाया जाए। पहला समाधान तो यह था कि

कम्यूनिज़्म के बाहय विस्तार के उद्देश्य से एक पृथक संख्या बनाई जाए जिस का प्रत्यक्ष रूप से सोवियत सरकार से कोई सम्बन्ध न बताया जाए। इसी समिति का नाम था थर्ड इन्टरनैशनल। इस थर्ड इन्टरनेशनल का विचार लेनिन को 1915-16 में स्विट्जरलैन्ड में आया था जब सेकेन्ड इन्टरनेशनल युद्ध की तबाहियों तथा कुछ सोशलिस्ट के परित्याग का शिकार हो कर लगभग समाप्त हो चुका था। जब कम्युनिस्ट संज्ञा स्थापित हो गई तो इस पर पुर्नविचार कर के लेनिन तथा ट्राटसकी ने पहली इन्टरनेशनल की बैठक मास्को में 24 जनवरी 1919 में बुलाई। प्लान केवल विश्व आन्दोलन ही न था पर यह समिति विदेशी हस्तक्षेप के विरूद्ध प्रत्याक्रमण भी कर सकेगी। आन्तरिक क्रांति की उत्पत्ति का भय अधिक प्रभावशाली हो सकता था। यह था भी ऐसा समय जब यूरोप में अराजकता फैल रही थी। हंगरी में क्रांति के पश्चात मार्च 1919 से अगस्त 1919 तक कम्युनिस्ट उत्थान पर थे। अप्रैल में बबेरिया में भी उनकी महत्ता बढ गई थी। पर इन चिनगारियों से ऐसे शोले न निकले जिनसे बूरज्वा कैपिटलिस्ट राज्य गिराए जा सकें। 1921 में जब थर्ड कांग्रेस आफ कप्यूनिस्ट इन्टरनेशनल की बैठक हुई तो हालात बदल चुके थे। चौथी कांग्रेस नवम्बर 1922 में, पाँचवी जून 1924 में छठी जून 1928 में पर प्रत्येक कांग्रेस में कप्यूनिस्ट दिन प्रतिदिन अपनी आशाऐं विश्वक्रांति की मिटती देखने लगे। खोज प्रारम्भ हुई कि कौन सा नया फारमूला अपनाया जाय जो इस परिवर्तन के युग में प्रभावशाली हो सके।

कमइर्ब्टन अथवा तृतीय कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल जिनोविएव की अध्यक्षता में काम कर रही थी। इसने पुराने जार के ऋणों के भुगतान से इन्कार कर दिया था तथा सम्बद्ध देशों के हस्तक्षेप के लिए हरजाना भी मांगा। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था समस्त विश्व की कप्यूनिस्ट पार्टियों के बीच समन्वय बनाए रखना, उन सारी "विनाशकारी" अथवा क्रांतिकारी विच्छेदक गतिविधियों में जो यह कम्युनिस्ट अपने अपने देश में क्रांति लाने के लिए कर रहे थे उन का पथ प्रदर्शन तथा सहायता करना। इसी कारण तृतीय कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल के अस्तित्व से सभी देश भयभीत थे। इसकी विस्फोटक गतिविधियां अन्य देशों से रूस के सम्बंध सामान्य नहीं बनने देती।

1924 में करोविन ने अपनी पुस्तक संक्राति काल में अन्तराष्ट्रीय नीति (International low of the Transition period) में मार्क्सवादी नीतियों का विश्लेषण किया। उसके विचार कि पुराने दायित्व निभाते हुए संक्रातिकाल में सोशलिज़्म तथा पूंजीवाद सहास्तित्व रहे तो अच्छा है। ट्रटस्की के चार कमीसार होने के पश्चात उसका असिसटेन्ट चिचारिन 1918 से 1930 तक विदेश मंत्री था तथा लेनिन, स्टालिन व पॉलिट व्योरो के आदेशानुसार कार्यवत था। उस का मुख्य ध्येय था सोवियत यूनियन को मान्यता दिलाना। हंगरी तथा बवेरिया मे सफलता मिली थी पर उसके आगे क्रांति की ज्वाला फैलाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। 1921 तक सोवियत यूनियन कुछ विविक्त सा था। समबद्ध देश अभी भी यह समझ रहे थे कि शायद सोवियत सरकार समाप्त हो जाएगी। दिसम्बर 1917 को जर्मनी से जो सन्धि हुई थी उसकी कड़ी शर्तो के कारण ट्राटसकी ने उसे रद्द कर दिया था तथा "न युद्ध न सन्धि (No war no peace) की नई पालिसी चलाई। परन्तु लेनिन ने जर्मनी से 3 मार्च

1918 की सोवियत जर्मन ब्रेस्ट लेटोविस्क की सन्धि कर ली। बेनादसकी कहता है कि इस सन्धि की शर्तें रूसके लिए बरबादी लाई। उकराईन पोलेन्ड, लिथेवानिया, स्टोनिया, लैटविया ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। ट्रान्सकाकेसिया का एक भाग तुर्की में मिल गया। रूस ने हरजाना भरा तथा 27% खेतिहर भूमि 73% लोहे की 75% कोयले की इन्डसट्री इत्यादि खोदी।

यद्यपि इस सन्धि से प्रत्यक्ष रूप से रूस की हानि हुई पर इससे रूस को संभलने का मौका मिल गया। शन्तिपूर्वक सोवियत रूस अब अपने नए कप्यूनिस्ट सुधार कर पाया। पुरानी न्याय पद्धति के स्थान पर नए "मानव" कोर्ट बने। उपाधियां आदि, सम्पति जब्त हो गई। नया ग्रेगोरियन कलेन्डर 31 जनवरी 1918 को बना। मेनशविक को सजा मिली 1918 से बार कप्यूनिज़्म ने नई शक्ल ली। 28 जून 1918 के अधिनियम से राष्ट्रीयकरण बढ़ा। बिजली, चमड़ा, सीमेन्ट, लकडी, शीशा तम्बाकू वर्तन, किशमिश सभी का राष्ट्रीयकरण हो गये। प्राइवेट ट्रेड की समाप्ति पर खाने का बटवारा भी गवर्नमेन्ट करने लगी।

रूस की दशा वह थी जो 30 वर्षीय युद्धोपरांत जर्मनी की थी इन्डसट्रीज पहले से घट कर 13% रह गई थी फरवरी 19, 1918 से भूमि का राष्ट्रीयकरण हुआ तो कृषकों को खाना उगाही (food levy) के लिए (बस अपने खाने भर कर बचा कर) दे देना पड़ता इससे पैदावार बढ़ाने की प्रेरणा ही समाप्त हो गई।

बाल्शविक ने अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए रूस की सारी आबादी तथा साधनों को जुटाकर एक और लगा दिया और इसी कठोर समय राज्य को वार कम्यूनिज़्म (war commisnism) का नाम दिया गया था 1917 से 1921 तक 'वार कम्यूनिज़्म तथा 1921 से 1928 तक नवीन आर्थिक नीति का प्रोग्राम चलाया गया। लेनिन का विश्वास था कि "भावी आदर्श राज्य बनाने के लिए वर्तमान में यदि भयावह स्थिति भी आए तो झेल जाना चाहिए"। 1921 से 7 वर्षीय युद्ध की चपेट में आया रूस और उसके निवासी केवल सोशलिज़्म के अपरीक्षित बेकुन्ठ के स्वप्न मात्र से नही जी सकते थे। मवेशी पालन में कमी, भुखमरी, ब्लेकमार्कटिंग शुरू हो गई। सरकार ने घबराकर एक समिति कृषकों की बनाई। कृषकों से भूमि लेकर स्टेट फार्म बनाए गए। 1920-21 में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा दक्षिणी पूर्वी रूस, वोल्गा प्रदेश में कोई फसल नही हुई। 50 मिलियन लोग अकाल ग्रस्त थे 5 मिलियन मर गये एक मिलियन रूस छोड गये।

मैक्सिम गोकी ने हर्बट हवर द्वारा अमरीका से सहायता याचना की। रूस का भय था कि कहीं समाज कल्याणकारी यह कार्य मशीन गनों से अधिक हानिकारक न हो पर सहायता से इन्कार खतरनाक था। वैटिकन चर्च के फादर एडमन्ड वाला का ध्येय वाल्शविज़्म को समाप्त करने का था उनसे कैसी मदद की? 20 अगस्त 1921 में अमरीकन राहत समिति तथा सोवियत सरकार के बीच समझौता हुआ। रेडक्रास ने भी मदद की। फिर भी कृषकों के विद्रोह हुए। 1921 में ताँबव में अन्तोनवा के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। कम्युनिस्टगढ़ क्रोनसटाइट तक में अशन्ति फैली। जब रूस में सोवियत "यूनियन विना कमयूनिज़्म" तथा "कप्यूनिज़्म हटाओ" की मांग बढी तो बार कम्यूनिज़्म की असफलता सामने थी। पर गर्वनमेंट ने तो जनता के खान

पान की जिम्मेवारी ली थी। वास्तविकता के संसार में आकर लेनिन ने क्रांति की चौथी वर्ष गांठ पर कहा "सैनिक तथय राजनैतिक जोश में आर्थिक दायित्व निभाने के वायदे मे असफलता तथा सरकारी उत्पादन वितरण में कही हमसे भूल हुई पर परिवर्तन तथा परीक्षण द्वारा कम्यूनिज़्म तक पहुंचने का मार्ग खोजना होगा" इसलिए लेनिन ने नई आर्थिक पालिसी शुरू की।

23.3 न्यू एकोनामिक पालिसी

नये सोशलिस्ट तथा प्राइवेट एकानोमी के मध्य एक समझौता, एक क्षणिक प्रविलम्बन था दुखद हालत को सही करने का 1921 में टोटल उत्पादन खानों तथा फैक्ट्रियों से 20% गिर गया। कृषकों की भूमि 62% कम हो गई। चौपाए 58 से 37 मिलियन रह गए। अमरीकन डालर का एक्सचेन्ज 1914 के 2 रूबुल से घट कर 1920 के 1200 रूबुल रह गया।

न्यू एकोनामिक पालिसी का एलान 15 मार्च 1921 को कम्यूनिस्ट पार्टी के 10वीं कांग्रेस अवसर पर हुआ। यह पालिसी प्रांरभ से ही बहुत परिभाषित नहीं थी। इस नई पालिसी में पहले वाला युद्ध कम्यूनिज़्म का तरीका छोड़ कर एक खाध कर लगाया गया। कृषक, अब अपना गल्ला स्वंय ही बेच सकता था और इससे फ्री ट्रेड तथा लाभ दोनों का उद्देश्य पूर्ण हुआ। भूमि अभी भी सरकार की थी पर कृषक खेती के नाते पैदावर से जुडा था। वह न भूमि बेच सकता था न छोड़ सकता था परन्तु खेती बढ़ाने के लिए वह मजदूरों को किराए पर रख सकता था मवेशी तथा मशीन भी। पार्टी का इससे भय था कि कुलक-वर्ग इससे बढ़ेगा पर लेनिन सफल रहा। बड़े बड़े इन्डसट्रीयल प्लान्ट लगाए गए जो कम्यूनिज़्म के लिए प्राथमिकता रखते थे अब सरकार के हाथ मे छोड़ दिये गये। यह धरोहर के समान कुछ विदेशी साम्राज्यवादियों को पट्टे पर दी गई कुछ छोटे कोआपरेटिव अथवा प्राइवेट लोगों को। इसमे 12.4% वरकरों की खपत हुई। प्रत्येक प्लान्ट चाहे फैक्ट्री, या प्राइवेट या सरकारी सब साम्राज्यवादी ढंग से चलाया गया। यह नारा किं "प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार" परिवर्तित होकर प्रत्येक को उसकी योग्यतानुसार हो गया। नैचुरल एकानोमी से हटकर मनी एकोनोमी की ओर अग्रसर होने के लिए एक मजबूत सोवियत सिक्के की आवश्यकता थी। बैकिग, अकाउनिटंग, क्रेडिट इत्यादि के लिए। नवम्बर 1921 मे स्टेट बैंक इस शर्त पर खुला कि उसका उद्देश्य व्यापार, खेती तथा इन्डस्ट्री मे सहायता के अतिरिक्त पैसे के लेन देन तथा मजबूत सिक्कों के प्रसार तथा वितरण मे लगना रहे। अक्तूबर 11, 1922 की सीवनारकोन ने स्टेट बैंक को एक नई करेन्सी की अनुमति दी। यह दस सोने के रूबल के बराबर चरवोनेट थे। इसमें भी 25% नए सिक्के विदेशी मुद्रा से संरक्षित थे पुराने सिक्के को जून 1924 से पूर्ण रूप से हटा दिया गया। बैंक को इसकी आज्ञा दी गई कि लघु कालीन कामरशियल तथा दीर्घकालीन लागत के प्राईवेट तथा क्वापरेटिव दोनों को दिए जाए। वर्ष भर में 116 आफिस देश में खुल गए। 1923 के प्रारंभ से बचत खाता भी खुला तथा मार्च 1924 से 2500 बैंक चल पड़े।

नेप के अन्तर्गत प्राइवेट उपभोक्ता से आशा की जाती थी कि वह फ्री मार्केट में पैसे से चीजें खरीदेगा। 7 अप्रैल 1921 में सवनारकोम ने एक कानून बनाया कि जिससे क्वाप्रेटिव को मान्यता देकर स्वाधीन ट्रेडिंग आर्गेनिजेशन बनाए कि वे आजादी से बेचने व खरीदने का अधिकार रखे सके। सितम्बर के कानून से वे अब सरकार से अलग होकर स्वंय अपनी बिजनेस

चलाने लगे। कोआप्रेटिव से आशा की जाती थी कि वह प्राइवेट व्यापार को अपने काबू में रखेगा तथा दाम बढ़ने से रोकेगा प्राइवेट का 3 गुना ट्रेड इस प्रकार बढ गया। विदेशी व्यापार फिर भी सरकार की मानोपली पर रहा इस पर लेनिन अड़ा रहा और 1923 की 12वीं कांग्रेस में सकोलनिकव तथा बुखरिन के सारे विवाद बेकार गए।

कुछ ने नेप को "कम्यूनिज़्म की पराजय" कहा तो कुछ ने कहा कि यह लाँग जम्प था बस आगे बढने के लिए स्वंय लेनिन भी नही जानता था कि जो दरवाजे साम्राज्यवादी शक्तियों पर खोले जा रहे है उसका अंत क्या होगा। इसके उद्देश्य अवश्य सही थे कि उत्पादन की क्वालिटी बढे, नगर तथा देहाती जीवन के बीच की दूरी घटे तथा साम्राज्यवाद को सोशलिस्ट देश में बढने से रोका जा सके।

यद्पि 16 जनवरी 1920 को सुप्रीम वार काउनसिल द्वारा सोवियत रूस का संक्षिप्त अवरोध समाप्त हुआ। विभिन्न देशों में अपने अपने हितों की रक्षा ही उद्देश्य बना हुआ था और कोई सामूहिक सहमति सम्बन्धों के संदर्भ में नही थी। अमरीका ने स्वंय को यूरोपी उलझावों से उतना ही दूर रखा जितना व सोवियत यूनियन से दूर था। उसे भय था कि यह बोल्शेविक प्रकोप महामारी बनकर न छा जाए कि उसे अटलान्टिक सागर भी न रोक पाए। ब्रिटेन की अपनी साम्राज्यवादी तथा राष्ट्रीय गुत्थियाँ थी जिन्हें विश्व युद्ध ने और बढ़ा दिया था। फ़्रांस प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात अभी तक अपनी क्षति को रो रहा था। छोटे छोटे राष्ट्र सम्प्रान्त तथा भयभीत से थे। सभी यह समझ रहे थे कि सोवियत सरकार एक क्षणिक दृष्यप्रपंच है यह मिट जाएगी। कम्यूनिस्ट सरकार का प्रथम दिवालियापन का चिन्ह थी लेनिन द्वारा चलाई गई नवीन आर्थिक नीति (न्यू एकानामिक पालिसी अथवा नेप) जिस के द्वारा भविष्य में शोषण के द्वार खुलते दृष्टिगोचर होने लगे थे केवल रूस का यथार्थवादी होने की प्रतिक्षा थी। रूस तथा अन्य देशों के बीच ताल मेल में बहुत कठिनाइयाँ थी। यद्यपि विदेशी कमीसार चिचारिन यह बताता रहता था कि वाह्य सम्बन्धों की सामान्यता के लिए साम्राज्यवादी नीतियों को अपनाना तो अनिवार्य नही है। परंतु विदेशों में भय था कि रूस में तृतीय अंतराष्ट्रीय (थर्ड इन्टरनैशनल) विद्यमान थी। विदेशी व्यापार का एकाधिकरण भी उतना ही उत्तेजनापूर्ण था जितना ऋणों का परित्याग तथा सोवियत रूस में बसे विदेशियों की सम्पत्ति का अधिहरण। 18 फरवरी 1918 के अधिनियम द्वारा सवनारकोम ने दिसम्बर 1917 से पहले के सभी कणों को रद्द कर दिया था। जार तथा प्राविजनल सरकार द्वारा दी गई कणों की गारण्टी भी समाप्त कर दी गई। यह सहबद्ध देश (Allied) कैसे सहन करते पासवोल्सकी तथा मोल्टन सयके अनुसार युद्ध के दौरान व युद्ध से पूर्व 13823 मिलियन रूबूल था जिसमें ब्रिटेन, फ़्रांस जर्मनी, बेलजियम अमरीका सभी का योगदान था। स्वंय सोवियत सरकार भी अवगत थी कि युद्ध में मरे व्यक्तियों का तो भले ही भूल जाए व माफ कर दे पर अपनी आर्थिक क्षति का वे नहीं भूल सकेंगे। कारणवश इन सभी प्रभावित देशों (ब्रिटेन, फ़्रांस, अमेरिका, जापान, चीन, इटली, स्पेन, बेलजियम, हालेन्ड, स्वीडन, नारवे, स्वीटजरलैन्ड, डेनमार्क, पुर्तगाल, ग्रीस, सरबिया, अर्जनटाइन, ब्राजील, परशिया तथा स्याम) ने इसे राष्ट्रीय नियमों को उल्लधंन बताया उनके प्रतिनिधियों ने एक विरोध पत्र पर हस्ताक्षर किये तथा इन देशों ने नई सोवियत सरकार को मान्यता प्रदान करने में भी देरी की।

6 जनवरी 1922 को सुप्रीम कांउसिल की कैन्स की बैठक में यह तय हुआ कि प्रत्येक देश या राष्ट्र को इसका अधिकार है कि वह अपनी आन्तरिक तथा वाह्य, राजनैतिक तथा आर्थिक नीतियों का चयन अपने राष्ट्र की सुविधानुसार करे तथा किसी दूसरे राष्ट्र को इसका अधिकार नहीं दे कि उसके अधिपत्य अथवा स्वाम्य नियमों की स्थापना करें। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने राष्ट्र तथा अन्य राष्ट्रों के प्रति अपने आबन्धों तथा दायित्व के प्रति सचेत रहे। यह सब कुछ सोवियत यूनियन को चेतावनी हेतु लिखा गया था और प्रथम बार सोवियत यूनियन को आमन्त्रित किया गया कि उसका भी इस महत्वपूर्ण राजनैतिक सगंठन में प्रतिनिधित्व हो।

10 अप्रैल 1922 को 34 राष्ट्रों की (रूस सहित) बैठक जनोआ में हुई ताकि यूरोप की आर्थिक बहाली पर विचार विमर्श हो सके। अमरीका ने केवल एक "प्रेक्षक" भेजा कि उसके हितों की सुरक्षा कर सके। रूसी एक सौदागरी व्यापारी शान से आये कम्युनिस्टों के समान नही जैसा कि लेनिन ने अपनी रोगशययया पर कहा था। विचार योग्य था यह प्रश्न कि क्या सोवियत यूनियन अपनी शर्तों पर मान्यता प्राप्त करेगा या विदेशी राज्यों की मांगों को पूरा करके चिचारिन ने कहा कि सोवियत यूनियन अपनी सीमाओं को विदेशी व्यापारियों के लिए खोलने पर तैयार है तथा युद्ध से पूर्व तथा उसके पश्चात् अपने आर्थिक दायित्वों को स्वीकार करने विदेशी साम्राज्यवादियों के सभी सम्पत्ति के अधिहरण की क्षतिपूर्ति (जो राष्ट्रीयकरण के कारण हुई) करने को तत्पर है परन्तु सोवियत युनियन के राजनैतिक सम्बन्ध पुर्नसंगठित कर ऋण भी सोवियत यूनियन को दिया जाए कि वह अपनी स्थिति बेहतर कर सके। सहबद्ध देश जिन्होंने युद्ध को बढावा दिया वह हरजाना भुगते। चिचारिन की यह मांग सही थी। जार तथा प्राविजनल सरकार व राष्ट्रीयकरण की हानि का बिल 13 बिलियन था जबकि चिचारिन द्वारा युद्ध के हरजाने काबिल 60 बिलियन था जो इन सहबद्ध देशों के युद्ध में हस्तक्षेप के कारण उन्हें भुगतना था। यदि हरजाना मिल जाए तो सोवियत यूनियन फिर ऋण भी नही लेगा। चिचारिन की इस मांग का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया प्रत्येक देश में उसकी सुविधानुसार ही थी। उदहारणतया ब्रिटेन जो रूस के साधनों तथा व्यापारिक अन्त: शक्ति तथा क्षमता से अनभिज्ञ न था वह चिचारिन के प्रस्ताव पर विचार विमर्श करने पर सहमत था ब्रिटेन को युद्धोपरान्त आन्तरिक आर्थिक बरबादी तथा बेरोजगारी को ठीक करना था तथा पूर्वी बाजार लेकर जर्मन बाजार की हानि की पूर्ति करना था। इसके विपरीत फ्रांस तथा बेलज्यिम जिनका भारी निवेश ऋण तथा औद्योगिक उधम के रूप में था इससे सहमत न थे। इनका इसका प्रतिकर मिलना तय हुआ। इस प्रकार पृथक पृथक प्रत्येक राष्ट्र का समझौता प्रारंम्भ हुआ। ब्रिटेन ने रूस के तेल की पैदावार पर अपनी इजारेदारी जमाने की इच्छा प्रकट की। इस पर अमरीका ने फौरन यह आग्रह किया कि फोर ईस्ट में पारंपरिक रूप से "खुले दरवाजे" की नीति थी वही चलना चाहिए।

जनेवा में अभी यह पारस्परिक द्वन्द चल रहा था कि रूस तथ जर्मनी ने (जो अछूत राज्य यूरोप में हो गये थे) रपालों में चुपके से सोवियत जर्मन सहयोग पर ध्यान दिया इससे पहले भी बरलिन मे इस प्रकार के प्रस्ताव पर बैठक हो चुकी थी। जिसमें, बड़े बड़े राजनैतिज्ञों ने मास्को से यूनीरल की बात की थी। 16 अप्रैल 1922 को दोनों देशों ने रापालो की सन्धि कर ली जिसके बाद 6 नवम्बर को एक दूसरा समझौता भी हो गया। इस सन्धि से दोनों देशों

की सौदाकारी की क्षमता बढ गई और उनका यह कदम पहली क्षति का धोतक था उन देशों के लिए जिन्होंने पहले जर्मनी के विरूद्ध वारसा की सन्धि की थी। सोवियत रूस विश्व राजनैतिक स्तर पर अब विभिक्त तथा अकेला न था। पार्थक्य के दबाव की नीति से जो हानि रूस को पहुंच सकती थी वह इस सन्धि से दूर हो गई। इस सन्धि को (हेराल्ड ट्रिव्यून) ने. ''घृणा सन्धि'' कहा है। इस सन्धि से पारस्परिक युद्ध हरजाने की मांग समाप्त हुई। जर्मन रूस राजनैतिक सम्बंध फिर हो गये। जर्मन लोगों ने अपनी समपत्ति के अधिहरण के पश्चात उसे अब मांगा नही। दोनों देश आर्थिक रूप से एक दूसरे के पूरक तथा सहायक हो गये। इस सन्धि ने फ़्रांस के सारे सपने तोड दिये अन्य देश भी इस प्रकार अपनी हानि पर चकरा गए। जनेवा कानफ्रेन्स ने यह भी प्रमाणित कर दिया था कि यूरोपी देशों से कोई भी समझौता सामूहिक नही बल्कि पृथक रूप से दो देशों के मध्य होगा। बर्लिन से मान्यता मिल जाने पर अब मास्को को पश्चिमी देशों के घराने में फिर से दखल मिल गया। इसके पश्चात सोवियत रूस को मान्यता तो मिलनी ही थी और समझौता भी समान रूप से हो सकता था। कान्फ्रेंस 19 मई को केवल इस शपथ पर समाप्त हो गई कि पारस्परिक मामलों मे यह देश हस्तक्षेप नही करेंगे। कान्फ्रेंस को किसी हद तक सफल बनाने के लिए स्पेशल कमीशन बनाये गये ताकि अभी तक के जो तय न हुये प्रश्न थे उन्हें हेग में बैठक में तय कर सके। जनेवा कान्फ्रेंस के पश्चात मास्को की सही स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खुल चुकी थी पर जनेवा कान्फ्रेंस केवल एक अधूरी राजनैतिक विजय थी। पश्चिमी देशों के बीच दरार तो आई थी पर सोवियत यूनियन के संदर्भ में यूरोप अभी बंटा हुआ था। अपनी सीमाओं की ओर ध्यान देते हुए रूस ने अपने नए सिद्धान्त "कोई सम्मेलन नही कोई हरजाना नही" के अंतर्गत क्रांति के भावुकता पूर्ण वातावरण में घोषणा कर दी कि कान्सटिनटनोपल तुर्क मुसलमानों के हाथ में रहेगा। कारण यदि रूस को भूमध्य महासागर का व्यापारिक मार्ग खुला मिल जाए तो उसे जलडमरू - मध्य में दिलचस्पी न थी। इसीलिए रूस ने तुर्की से मित्रता गांठी, जलडमरू-मध्य पर उनके अधिकार को स्वीकार करते हुए उस्मानी राज्य के बंटवारे की नीति अपनाने पर रूपी देशों का विरोध किया। यह भी कहा कि अब जलडमरू-मध्य को ब्लैक सी के जहाजों के लिए न खोला जाए क्योंकि यह जार की आक्रमणकारी नीति के जमाने की माँग थी। सोवियत यूनियन चाहता था कि अब जलडमरु-मध्य सभी युद्ध के जहाजों पर बन्द कर दिया जाए ताकि विदेशी शक्तियाँ ब्लैक सी में दाखिल होकर दुर्बल रूस पर आक्रमण न कर सकें। रूस के इस रवैये से तथा यूनान के युद्ध के क्षेत्र में आजाने से अब समस्या गम्भीर हो चुकी थी। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लीग आफ नेशन्ज में यह मुद्दा उठाया जा सकता था पर वही भी सर्वसम्मति से कोई अधिदेश होना असम्भव था किसी एक महान शक्ति के शासनादेश में भी इस जलडमरू-मध्य को नही छोड़ा जा सकता था। ऐसी मध्यगत तटस्थ शक्तियों जैसे अमरीका स्वीडिन हालेन्ड यह जिम्मेवारी लेने पर तत्पर न थे। तुर्की तथा यूनान दोनों जलडमरू मध्य पर अधिकार जमाना चाहते थे। तुर्की को यूरोप से निकालने के लिए सब वैसे भी बेचने थें। जलडमरूमध्य जैसे आर्थिक हथियार को तुर्की के देने को फिर यूरोपीय शक्तियाँ कहीं तैयार होती पर फ़्रांस तथा इटली के कैथालिक जलडमरू -मध्य को यूनान को भी नहीं देना चाहते थे। प्रेसिडेन्ट विलसन की 14 सूत्रीय नीति में यह साफ साफ लिखा था कि तुर्की भाग उस्मानी राज्य का तुर्की को दे दिया जाए अन्य राष्ट्र उसके राज्य में

सुरक्षित तथा स्वतंत्र रहे पर डारडालैल्स को जलडमरू-मध्य पर सभी राष्ट्रों के व्यापार के लिए खोल देना चाहिए तथा सुरक्षा की अन्तराष्ट्रीय गारन्टी भी रहनी चाहिए।

जब कमाल अतातर्क ने यूनान को नवम्बर 1922 में पराजित कर दिया तो लोसाना में एक बैठक जलडमरू-मध्य के प्रश्न पर बुलाई गई। पर रूस, ग्रेट ब्रिटेन के बीच वाद विवाद शुरू हो गया। रूस जानता था कि ब्रिटिश छोटे से छोटे से जहाज के आगे वह अपने जहाज नही बचा सकता। ब्रिटिश नेवी तगडी थी। रूस को अपना ब्लाकेड (नाके बन्दी) ब्रिटेन द्वारा तथा ब्रिटेन की डेनिकिन और रेनगेल को सहायता देना अभी भी याद था। अतएवं मास्को ने घोषणा की कि वह अपनी सुरक्षा खतरे में नही डाल सकती तथा ब्लैक सी मे मास्को के भी जहाज न जाए पर अन्य देशों के जहाज भी न आए। ब्रिटेन ने तब इसका विरोध किया क्योंकि उसकी समुद्री शक्ति अत्यन्त मजबूत थी। बुलगरिया तथा रूमानिया को रुसी आक्रमण से भी बचाना था। निर्णय स्थागित हो गया। अप्रैल की दूसरी कान्फ़्रेस में रूस को नही बुलाया गया। 24 जुलाई को लूसाना कन्वेशन में ऐसी सन्धि हुई जिसेमें सब ऐसी चीजें दी जो रूस के प्रतिकूल थी। अभी रूस इन दुख से सभंल न पाया था कि उसका राजदूत वरोवसकी 10 मई कों एक सूईस मारिस कोनराडी द्वारा मार डाला गया। लूसियाना कन्वेन्शन को रूस ने नही माना तथा इन्टरनेशनल कमीशन से भी अलग रहा।

जर्मनी ने रूस के प्रतिवाद पर भी उसे विवश कर दिया कि ब्रेस्ट लीटोव्सक सन्धि के अन्तर्गत वह जर्मनी के सहायक समबद्ध देश तुर्की को बातुम, कार्स तथा अर्दहान के इलाके दे दे। युद्ध के बिना इन इलाकों को दे देना दुखद था फिर यह इलाके महत्वपूर्ण स्थिति के थे जिस के चले जोने से ट्रान्सकाकेसिया का तेल के खजाने से भरा इलाका सुमेध 'अथवा असुरक्षित हो गया मुख्य रूप से बाकू बातुम की पाइपलाइन का अन्त वाला भाग। पहले जर्मनी फिर ब्रिटेन ने स्वाधीन जार्जिया के सहायक बन कर वहां अपना अड्डा जमाने की चेष्टा की थी। जब यहां अराजकता लगी तो मुस्तफा कमाल की सेना 11 मार्च 1921 को यहां आ गई और केवल केमलिन ने अनुरोध पर तुर्की ने इसे छोड़ा और बातुम फिर लाल सेना के हाथ आ गया पर इसके बदले रूस को कार्स तथा अरदहान अनकारा (तुर्की) को देना पड़ा।

सोवियत यूनियन तथा भारत के सम्बनधों में अक्तूबर क्रांति के पश्चात एक नए युग का आरंभ हुआ। सोवियत यूनियन सब प्रकार के उपनिवेशिता (कलोनियलिज़्म) के विरुद्ध था। यद्यपि जार ने मित्रता बढ़ाने की चेष्टाओं की सराहना नहीं की परन्तु सोवियत यूनियन ने सभी पूर्वी दलित देशों के प्रति सहानुभूति का अनदाज रखा था। क्रांति से पूर्व वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय का तथा भूपेनद्र नाथ दत्ता की अपील रूसी क्रांतिकारियो से इस की द्योतक है। अंग्रेज इस नए प्रभाव से कितना भयभीत थे इसेका आभास हमे नेशनल अभिलेखागार (Archive) के डाकूमेन्टो मे होता है। लेनिन की समी कृतियो मे भारत पर टिप्पणी मिलती है मुख्यता उसके संकलित ग्रन्थों में चौथी से आखरी जिल्द तक 1900 से 1923 तक का भारत का वृतान्त मिलता है। 1920 की द्वितीय कांग्रेस ऑफ कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल में न केवल लेनिन की थेसिस "कलोनियल तथा नेशनल प्रश्नों पर प्रस्तुत हुई बल्कि एम एन राय की थेसिस पर भी लेनिन ने कुछ महत्वपूर्ण तथा भौतिक परिवर्तन किए। दोनों की उपनिवेश देश की साम्राज्यवादी देशो के

विरुद्ध युद्ध की नीतियाँ तथा युक्तियों पर दीवेनद्र कौशिक ने प्रकाश डाला है। लेनिन गांधी जी का प्रशंसक था गांधीजी को ''क्रांतिकारी, जनसमूह को प्रेरित करने वाला, भारतीयों का हिन्दू टाल्स्टाय'' इत्यादि के नाम से लेनिन ने याद किया है।

14 फरवरी 1921 को लेनिन से भारतीय क्रांतिकारी अब्दुलख्ब ने ताशकन्द में भेंट की थी। अपनी मृत्यु से पूर्व भी 2 मार्च 1923 में रोगशयया पर भी लैनिन ने भारत के प्रति आशाजनक विचार अपने एक निबन्ध "Better Fewer But Better" में प्रदर्शित किए थे।

लेनिन पर भारत के विरूद्ध ब्रिटेन से समझौते का आरोप लगाना सही नही है। यद्यपि एम. एन. राय की नीतियों के प्रति लेनिन बहुत उदासीन था। उसे स्वाधीनता सेना का उत्तरपूर्वी सीमा पर तैयार किया जाना जब कि अफगानिस्तान का भी असहयोग था कुछ ठीक न लगा था। फिर भी उसने सभी क्रांतितिकारी,क्रांतिकारी, प्रोग्रामों की तैयारी में पूर्ण रूप से भाग लिया और इस संदर्भ में उसका सहयोग बिना शोर किये बना रहा। यधिप 1921 में ब्रिटेन से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे परन्तु भारत में अंग्रेजो की उपनिवेशता के विरोध में बराबर कमइन्टर्न के दैनिकों तथा पत्रिकाओं में निकलता रहता था। लार्ड कर्जन जब विदेशी सेक्रेट्री होकर आया तो 6 महीने के भीतर ही उसनें 8 मई 1923 को धमकी भरी चेतावनी मास्को को दी कि यदि रूस ने अपने दुरूत्साहक एजेन्ट भारत से न हटाये एवं ब्रिटेन के विरुद्ध प्रोपेगैन्डा बन्द न किया भारत में तो वे अपना व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लेंगे। परन्तु रूस तथा लेनिन इससे भयभीत नही हुए चौथी कांग्रेस आफ कमइन्टर्न ने फिर से इस युद्ध को जारी रखने का प्रण किया तथा 'भारतीय अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को एक तार भेजकर भारतीय कम्युनिस्टो को स्वतंत्रता प्राप्ति के कार्यों में संलग्न रहने को भी उकसाया।

चीन मे रूस के सम्बन्धों में कुछ प्रश्न थे जैसे चीनी पूर्वी रेलवे की स्थिति तथा मंगोलिया का प्रश्न। 25 मई 1915 से रूस व चीन ने मंगलिया पर प्रभाव बना रखा था। जो अराजकता उस समय मंगोलिया में फैली उस का लाभ जापान ब्रिटेन लाल, श्वेत रूसी सेनायें चीनी मंगोल एजेन्ट उठा रहे थे। चीन ने इस दशा का फायदा उठाकर मंगोलिया पर पूर्ण रूप से कन्ट्रोल कर लिया और रूस के दरवाजे तक इस सिविल वार को पहुंचा दिया। पर अब श्वेत सेना पूर्व तथा दक्षिण दोनों ओर से दबी थी तथा मंगोलिया के पास पहुंच चुकी थी। जनरल बैरल उन्होंने स्टर्नबर्ग के नेतृत्व में उन्होनें 3 फरवरी को मंगोलिया की राजधानी ऊरगा को जीत लिया ऊरगा से ही बैरन (जो आधा बौद्ध धर्म, आधा इसाई धर्म का अनुयायी था) बाल्शविजम से लड़ना चाहता था। उसका स्वप्न "एशिया एशियाई लोगों के लिए" टोकियों को भी अपील कर रहा था तथा निपोनी जनरल उसे बराबर युद्धोपकरण सप्लाई कर रहा था। जापान एक "ग्रेटर ईस्ट एशिया" के सपने संजो रहा था। अपनी मई 1921 की पराजय बैरन को याद थी अतएव वह पूर्व में बैकाल की ओर बढा परन्तु लाल सेना ने उसे हराकर उसका पीछा करते 7 जुलाई को ऊरगा ले लिया। बैरन स्टर्नबर्ग को ट्रायल के पश्चात मार डाला गया। अब लाल फौजी ने मंगोलिया की राजधानी को लेकर 5 नवम्बर 1921 को मास्को मंगोलिया के बीच ऊरगा सन्धि की जिसमें थोडा बहुत चीन का भी जिक्र था।

अब मंगोलिया चीन रूस तथा निप्पोनी नीतियां उलझने लगी। रूस को इसका अनुमान था कि जापान में मंगोलिया पर कन्ट्रोल के क्या प्रभाव होगें।

मंगोलिया के प्रश्न के उभरने से पहले सोवियत चीन सम्बन्ध समानता तथा मित्रता के हो गए थे। क्रेमलिन ने यह एलान कर दिया था कि पिछली सन्धियां रद्द कर चीन की सारी प्रोपर्टी वह लौटा देगा। बाक्सर युद्ध को हरजाना भी माफ कर उसे आत्मसर्मपण से मुक्ति देदी और चीन को एक प्रिय राष्ट्र का देकर आर्थिक सम्बन्ध पुर्नस्थापित कर लिए थे। यह ऐसी चीज थी जिनसे साम्राज्यवादी देशों द्वारा 75 वर्ष से दलित चीन को रूस से ही ढाढस मिली थी।

रूस के प्रतिनिधि एडोल्फ जोफ ने सनयातसेन तथा अन्य अफसरों से मिलकर यह भी आश्वासन दिया कि वह चीन के एकाकीकरण की राष्ट्रीय क्रांति से सहमत हैं चीन की आवश्यकता स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय एकता थी जिसमें रूस ने उसे सहायता देने का वादा किया। चीनी पार्लियामेंट ने इसे "अर्न्तराष्ट्रीयता स्तर पर साम्राज्यवाद पर विजय" बताया। अब सी.टी.वंग तथा कराखान की सन्धि वार्ता में वगंखॉ की मांग थी कि रूस मंगोलिया छोड़ जाए। रूस का कहना था कि यह मामला मंगोलिया का है। इस पर चीन को टिप्पणी का अधिकार नही तथा वैसे ही वे वही मंगोल सरकार के आग्रह पर टिके है। जैसे ही श्वेत सेनाएं खत्म हुई लाल सेना भी चली जाएगी 14 मार्च 1924 को एक रूस चीन सन्धि द्वारा रूस का अधिपत्य मंगोलिया पर चीन ने मान लिया। रूस की आशा कि "पूर्व में सोसलिस्ट रोशनीफैलेगी यधिप रूस की चेष्टा पूर्व को कम्यूनिस्ट बनानें की सफल न हो सकी। परन्तु उसकी सीमाएं सुरक्षित रही। मंगोलिया में शक्ति बढ़ा। पश्चिमी देशों में उसे बडी कठिनाइयां पेश आई। उत्तर पश्चिमी सीमाओं पर रूस ने 1920 तक शान्ति स्थापित करली थी। फिनलैनड से यद्यपि क्षेत्रीय झगड़े थे पर 14 अक्तूबर 1920 को शान्ति सन्धि द्वारा यह तय पा गये थें। रीगा में 18 मार्च 1921 मे सन्धि हुई थी जिसके अन्तर्गत सोवियत पौलिश युद्ध का अन्त हुआ था यधिप अभी तक सोवियत यूनियन को मान्यता नही मिली थी। कुछ देश कहते थे कि यदि मान्यता दे दी जाए तो रूस नर्म पड़ जाएगा तथा यूरोप के आर्थिक उत्थान में योगदान देगा। अन्य इस पर सहमत न थे कयोंकि इससे क्रांतिकारी शक्तियों को बढावा मिलने का भय था। सबसे पहले लन्दन ने मान्यता दी लेबर पार्टी ने फरवरी 1924 में भी इस मतभेद का जिक्र था। बाद में कन्जरवेटिव पार्टी ने सत्तारूढ होने के पश्चात यधपि मान्यता तो रहने दी पर एग्रीमेन्ट रद्द कर दिया। फ्रांस भी अब "जीवित" सोवियत यूनियन को मान्यता देने पर 28 अक्तूबर 1924 को विवश हो गया।

यदि लेनिन की बाह्य तथा आन्तरिक नीति का जायजा लें तो 1921 से 1924 तक ही नही उसके बाद भी लेनिन की महानता उजागर मिलती है। सारे विश्व के लिए सोवियत यूनियन एक मुख्य आधार तथा आश्रय हो गया था। लेनिन ने "तीन (डामीनेटिगं हाईटज") प्रभुत्व की उचाईयाँ अर्थात मोनोपोली (एकाधिकार) राजनैतिक शक्ति की, प्रैस की तथा विदेशी व्यापार की अपने पास रखी थी। यह तय था किं रूस बाह्य सहायता पर निर्भर रह कर अपना सोशलिस्ट प्लानिंग पर आधारित आर्थिक ढांचा नही तैयार कर सकता था। केवल ऐक पार्टी तथा फौलादी इरादों साहस तथा डिसिपलिन द्वारा ही रूस अपनी दशा सुधार सकता था विश्व केवल मजबूत शक्तिशाली की आवाज सुनता था। इसके लिए सोवियत लोग कोई भी कुरबानी देने पर

तम्पर थे कि "न्यू एकनामिक पालिसी वाले रूस को सोशिलिस्ट रूस बना सकें" यही तोलेनिन ने अपने आखिरी भाषण में 20 नवम्बर 1922 को कहा था।

प्रो0 तारले के अनुसार सोवियत डिप्लोमेसी के द्वारा लेनिन तथा स्टालिन ने पारस्परिक अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धों में एक नये युग का आरम्भ किया। सोवियत डिप्लोमेसी जिन स्थितियों तथा तथ्यों पर निर्मित तथा आधारित थी वे अपनी नवीन धारणाओं सहित एक ऐसा हथियार है जो सोवियत यूनियन के अतिरिक्त उसके शत्रुओं के पास भी नही। सोवियत डिप्लोमेसी मार्कसिस्ट लेनिनिस्ट वैज्ञानिक थ्यौरी द्वारा सुरक्षित तथा सामाजिक प्रगति को प्रथमिकता प्रदान करने वाले अटूट उसूलों पर आधारित है। इन दो तत्वों द्वारा वह न केवल अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के प्रचलित झुकावों के प्रति सचेत रहा बल्कि घटनाओं के चक्र के साथ-चलते रहने का भी हौंसला उसमें बना रहा।"

23.4 बोध प्रश्न-

प्र.1 लेनिन की आंतरिक व परराष्ट्र नीति का मूल्यांकन कीजिए।

प्र.2 न्यू एकोनोमिक पालिसी से आप क्या समझते है?

23.5 संदर्भ ग्रथ :-

(1) Belaff, The Foreign Policy of Soviet Russia Oxford University Press,1948

(2) Carr, E.H, A History of Soviet Russia Socialism in one Country

(3) Coates et all, A History of Anglo-Soviet relations, London,1945

(4) Kaushik, Devadera, Soviet Relations Delhi 1971

(5) Mazour A.G., Russia, Past and Present USA 1951

(6) Pares, Bernard, A History of Russia London 1962

(7) Riasanovsky, Nicholas, A History of Russia Oxford Press 1969

(8) Slussev, Robert, Soviet Foreign Policy Londonn 1967

MAHI-02/ISBN13/978-81-8496-261-1